चाँद सितारे

हमारे अन्य प्रकाशन

विजय किस की
आँचल और आँसू
उसकी कहानी
प्रेम पुजारिन
कौन किसी का
आँसू
आग
बुरदा फरोश
राज कुमारी की कहानी
समाज का अत्याचार
पति पत्नी प्रेम

सहगल प्रकाशन सं०–५

THE KASHMIR BOOKS SYNDICATE + BOOKS DEPTT.

चाँद सितारे

chand sitara

रविन्द्र नाथ ठाकुर

Ravinder Nath Takur

प्रकाशक

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

चौक फतहपुरी, देहली ६

अन्तिम प्यार	६
धन की भेंट	२८
खोया हुआ मोती	४६
हड्डियों का पिंजर	७०
मौन सौंदर्य	८२
कवि का हृदय	६१
समाज का शिकार	६६
प्रेम का मूल्य	१०२
भिकारन	११०
अनमोल भेंट	११६

नई रोशनी	१२८
मातृ भूमि से दूर	१४०
कवि और कविता	१५१
यह स्वतन्त्रता	१५६
विद्रोही	१६६

—:**:—

अपनी बात

कवि सम्राट रविन्द्र नाथ ठाकुर की सर्व गुण सम्पन्न प्रतिभा से प्राय: प्रत्येक व्यक्ति परिचित है उनकी प्रतिभा के विषय में और कुछ मेरा लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि कवि सम्राट रविन्द्र नाथ ठाकुर की उन कहानियों का हिन्दी में संग्रह करूँ जो कि पढ़ने में मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। अब मुझे उनकी कहानियों के संग्रह का अवसर मिला और यह "चाँद सितारे" कहानी संग्रह आपके सामने है। वैसे एक सर्वतोमुखी लेखक की कृतियों में से यह कह सकना कि कौन सर्व श्रेष्ठ है या कौन चाँद और कौन सितारे हैं, बहुत कठिन है। फिर भी मैंने इस संग्रह में उन कहानियों को रखा है जो मुझे विशेष अच्छी लगीं। वैसे तो मनुष्य का जीवन ही एक कहानी है और उसके जीवन में प्रति दिन घटित होने वाली घटनाएं कहानियों का संग्रह है। ठाकुर की कहानियाँ भी मनुष्य जीवन के बहुत निकट हैं। इन कहानि-

यों को पढ़ कर प्रत्येक पाठक अपने ही जीवन की घटना समझता है। कहानी की विशेषता भी यही है।

मैंने इन कहानियों में पाँडित्य प्रदर्शन की बजाए सीधी-सादी सरल हिन्दी में अनुवाद किया है। अनुवाद कार्य में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ ? कैसा बन पड़ा है ? इस बात का पाठक स्वयं निर्णय कर सकेंगे ?

दिल्ली
१९५०

श्रीकृष्ण गुप्त

अन्तिम प्यार

आर्ट स्कूल के प्रोफ़ेसर मनमोहन बाबू घर पर बैठे मित्रों के साथ मनोरंजक वार्तालाप कर रहे थे, ठीक उसी समय योगेश बाबू ने कमरे में प्रवेश किया।

योगेश बाबू चित्रकार थे, उन्होंने अभी थोड़े समय पूर्व ही स्कूल छोड़ा था। उन्हें देख कर एक व्यक्ति ने कहा—"योगेश बाबू! नरेन्द्र क्या कहता है, आपने सुना ?"

योगेश बाबू ने आराम कुर्सी पर बैठ कर पहले तो एक लम्बा साँस लिया। तत्पश्चात बोले—"क्या कहता है ?"

"नरेन्द्र कहता है बंग प्रान्त में उसकी कोटि का कोई भी चित्रकार इस समय नहीं है।"

"ठीक है, अभी कल का छोकरा है। हम लोग तो जैसे आज तक घास छीलते रहे हैं।" झुंझला कर योगेश बाबू ने कहा।

जो लड़का बातें कर रहा था उसने कहा—"केवल यही नहीं, नरेन्द्र आप को भी अच्छी नज़र से नहीं देखता।"

योगेश बाबू ने लापरवाही से कहा—"क्यों, कोई अपराध ?"

"वह कहता है आप आदर्श का ध्यान रख कर चित्र नहीं बनाते।"

"तो किस दृष्टिकोण से बनाता हूँ ?"

"रुपये के लिये।"

योगेश ने एक आँख बन्द करके कहा—"व्यर्थ।" फिर आवेश में कान के पास से अपने अस्त-व्यस्त बालों को व्यवस्था देकर बहुत देर तक मौन बैठा रहा। चीन का जो सब से बड़ा चित्रकार हुआ है उसके बाल भी बहुत बड़े थे। यही कारण था कि योगेश ने भी स्वभाव विरुद्ध सिर पर लम्बे-लम्बे बाल रखे हुए थे। ये बाल उसके मुख पर अत्यन्त कुरुप प्रतीत होते थे। क्योंकि बचपन में एक बार चेचक के आक्रमण से उसके प्राण तो बच गये थे किन्तु मुख बहुत कुरुप हो गया था। एक तो श्याम-वर्ण, दूसरे चेचक के छिद्र। मुख देख कर सहसा यही जान पड़ता था, मानों किसी ने बन्दूक में छर्रे भर कर मुख को लक्ष्य बनाया हो।

कमरे में जो लड़के बैठे थे वह योगेश बाबू को क्रोधित देख कर उसके समक्ष ही मुंह बन्द करके हंस रहे थे।

सहसा वह हंसी योगेश बाबू ने भी देख ली। क्रुद्ध स्वर में बोले—"तुम लोग हंस रहे हो, क्यों ?"

एक लड़के ने चाटुकारिता से जल्दी-जल्दी कहा—"नहीं महाशय ! आप को क्रोध आए और हम लोग हंसें, यह कभी संभव हो सकता है ?"

"उँह ! मैं समझ गया—अब ज्यादह चालाकी की आवश्यकता नहीं। क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि अब तक तुम सब दाँत निकाल कर रो रहे थे, मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ।" यह कह कर योगेश बाबू ने आँख बन्द कर ली।

लड़कों ने किसी तरह हंसी रोक कर कहा—"चलिये यूं ही सही, हम हंसते थे रोयें क्यों ? नरेन्द्र के पागलपन को सोच

कर हंसते थे। वह देखो मास्टर साहब के साथ नरेन्द्र भी आ रहा है।"

मनमोहन बाबू के साथ-साथ नरेन्द्र भी कमरे में आ गया।

योगेश ने एक बार नरेन्द्र की ओर वक्रदृष्टि से देख कर मनमोहन बाबू से कहा—"महाशय! नरेन्द्र मेरे विषय में क्या कहता है?"

मनमोहन बाबू जानते थे कि उन दोनों में लगती है। दो पाषाण जब परस्पर टकराते हैं तो अग्नि उत्पन्न हो जाती है। वह समझ गये कि आज भी कुछ न कुछ हो कर ही रहेगा। आहिस्ता-आहिस्ता हंसते हुए बोले—"योगेश बाबू नरेन्द्र क्या कहता है?"

"नरेन्द्र कहता है कि मैं रुपये के लिये चित्र बनाता हूँ। मेरा कोई आदर्श नहीं है?"

मनमोहन बाबू ने पूछा—"क्यों नरेन्द्र?"

नरेन्द्र अब तक मौन खड़ा था, अब किसी तरह आगे आ कर बोला—"हाँ कहता हूँ, मेरी यही सम्मति है।"

योगेश बाबू ने मुंह बना कर कहा—"बड़े सम्मति देने वाले आये। छोटा मुंह बड़ी बात। अभी कल का लड़का और इतनी बड़ी-बड़ी बातें।"

मनमोहन बाबू ने कहा—"योगेश बाबू जाने दीजिये, नरेन्द्र अभी लड़का है और बात भी साधारण है। इस पर वाद-विवाद की क्या आवश्यकता है?"

योगेश बाबू उसी तरह आवेश में बोले—"लड़का है! नरेन्द्र लड़का है। जिस के मुंह पर इतनी बड़ी-बड़ी मूंछें! वह यदि

लड़का है तो बूढ़ा कौन होगा । मनमोहन बाबू आप क्या कहते हैं ?"

एक विद्यार्थी ने कहा—"महाशय अभी ज़रा देर पहले तो आपने उसे कल का छोकरा बताया था ।"

योगेश बाबू का मुख क्रोध से लाल हो गया । बोले—"कब कहा था ?"

"अभी इस से ज़रा पहले ।"

"असत्य, सर्वथा असत्य । जिसकी इतनी बड़ी-बड़ी मूंछें हैं मैं उसे लड़का कहूँ, असम्भव है । क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि मैं बिल्कुल मूर्ख हूँ ।"

सब लड़के एक स्वर से बोल उठे—"नहीं महाशय ! ऐसी बात हम भूल कर भी ज़बान से नहीं कह सकते ।"

मनमोहन बाबू किसी तरह हंसी को रोक कर बोले—"चुप-चुप ! गोल माल न करो ।"

योगेश बाबू ने कहा—"हां नरेन्द्र ! तुम यह कहते हो कि बंग प्रान्त में तुम्हारी टक्कर का कोई चित्रकार नहीं है ।"

नरेन्द्र ने कहा—"आपने कैसे जाना ?"

"तुम्हारे मित्रों ने कहा है ।"

मैं यह नहीं कहता । तब भी इतना अवश्य कहूँगा कि मेरी तरह हृदय रक्त पीकर बंगाल में कोई भी चित्र नहीं बनाता ।"

"इस का प्रमाण ?"

नरेन्द्र ने आवेशमय स्वर में कहा—"प्रमाण की क्या आवश्यकता है । मेरा यही विचार है ।"

"तुम्हारा विचार असत्य है ।"

नरेन्द्र बहुत कम बोलने वाला व्यक्ति था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मनमोहन बाबू ने इस अप्रिय वार्तालाप को बन्द करने के लिए कहा—"नरेन्द्र इस बार प्रदर्शनी के लिये तुम चित्र बनाओगे ना ?"

नरेन्द्र ने कहा—"विचार तो है।"

"देखूंगा तुम्हारा चित्र कैसा रहता है।"

नरेन्द्र ने श्रद्धा भाव से उनकी पग धूलि लेकर कहा—"जिस के गुरु आप हैं उसे क्या चिन्ता। देखना सर्वोतम रहेगा।"

योगेश बाबू ने कहा—"राम से पहिले रामायण! पहिले चित्र बनाओ फिर कहना।"

नरेन्द्र ने मुंह फेर कर योगेश बाबू की ओर देखा। कोई भी बात न कही, किन्तु इस मौन भाव और उपेक्षा ने बातों से कहीं अधिक योगेश के हृदय को कष्ट पहुँचाया !

मनमोहन बाबू ने कहा—"योगेश बाबू चाहे आप कुछ भी कहें मगर नरेन्द्र को अपनी आत्मिक शक्ति पर बहुत बड़ा विश्वास है। मैं दृढ़ निश्चय से कह सकता हूँ कि यह भविष्य में एक बड़ा प्रसिद्ध चित्रकार होगा।"

नरेन्द्र आहिस्ता-आहिस्ता कमरे से बाहर चला गया।

एक विद्यार्थी ने कहा—"मास्टर जी, नरेन्द्र में किसी सीमा तक विक्षिप्तता की झलक दिखाई देती है।"

मनमोहन बाबू ने कहा—"हाँ यह मैं मानता हूँ कि जो व्यक्ति अपने भाव अच्छी तरह प्रकट करने में सफ़ल हो जाता है, उसे सर्व-साधारण किसी सीमा तक विक्षिप्त समझते हैं।

चित्र में एक विशेष प्रकार का आकर्षण तथा मोहकता उत्पन्न करने की उसमें असाधारण योग्यता है। तुम्हें मालूम है नरेन्द्र ने एक बार क्या किया था। मैंने देखा कि नरेन्द्र के बायँ हाथ की उंगली से खून का फव्वारा छूट रहा है और वह बिना किसी कष्ट के बैठा हुआ चित्र बना रहा है। मैं तो देख कर चकित रह गया। मेरे मालूम करने पर उसने उत्तर दिया कि उंगली काट कर देख रहा था कि खून का वास्तविक रंग क्या है। अजीब व्यक्ति है। तुम लोग इसे विक्षिप्तता कह सकते हो, किन्तु इसी विक्षिप्तता के ही कारण तो वह एक दिन अमर कलाकार कहलाएगा।"

योगेश बाबू एक आँख बन्द करके सोचने लगे। जैसे गुरु वैसे चेले--दोनों के दोनों पागल हैं।

: २ :

नरेन्द्र सोचते सोचते मकान की ओर चला—रास्ते में जन-साधारण के समूह का यातायात था। कितनी ही गाड़ियां चली जा रही थीं। किन्तु इन बातों की ओर उसका ध्यान न था। उसे क्या चिन्ता थी ? उसकी दशा केवल वही जाने।

वह थोड़े से समय के अन्दर ही बहुत बड़ा चित्रकार हो गया। इस थोड़े से समय में वह इतना सुप्रसिद्ध और सर्व प्रिय हो गया था कि उसके ईर्षालु मित्रों को अच्छा न लगा। इन्हीं ईर्षालु मित्रों में योगेश बाबू भी थे। नरेन्द्र में एक विशेष योग्यता और उसकी तूलिका में एक असाधारण कोमलता है। योगेश बाबू इसे दिल ही दिल में खूब समझते थे, परन्तु ऊपर से उसे मानने के लिये तैयार न थे।

इतने थोड़े से समय में ही उसके इतनी प्रसिद्धि प्राप्त करने का

एक विशेष कारण भी था। वह यह कि नरेन्द्र जिस चित्र को भी बनाता था अपनी सारी योग्यता उसमें लगा देता था। उसकी दृष्टि केवल चित्र पर रहती थी, पैसे की ओर भूल कर भी उसका ध्यान न जाता था। उसके हृदय की महत्वाकांक्षा थी कि चित्र बहुत ही सुन्दर हो। उसमें अपने ढंग की विशेष विलक्षणता हो। मूल्य चाहे कम मिले या अधिक। वह अपने विचार और भावनाओं की मधुर रूपरेखाएं अपने चित्र में देखता था। जिस समय चित्र चित्रित करने बैठता तो हर तरफ फैली हुई असीमित प्रकृति और उसकी सारी रूपरेखाएं हृदय पट से गुम्फित कर देता था। इतना ही नहीं, वह अपने अस्तित्व से भी विस्मृत हो जाता था। यह उस समय पागलों की भाँति दिखाई पड़ता था। उस समय अपने प्राण तक उत्सर्ग कर देने से भी संभवत उसको संकोच न होता। यह दशा उस समय उस की एकाग्रता की होती थी। वास्तव में इसी कारण से उसे यह सम्मान प्राप्त हुआ था। उसके स्वभाव में सादगी थी। वह जो बात सादगी से कहता, लोग उसे अभिमान और प्रदर्शन से लदी हुई समझते थे। उसके सामने कोई कुछ न कहता था, परन्तु पीठ पीछे लोग उसकी बुराई करने से न चूकते। सब के सब नरेन्द्र को संज्ञाहीन सा पाते थे। वह किसी की बात कान लगाकर न सुनता था। कोई पूछता कुछ, और वह जवाब देता था कुछ। वह सर्वदा ऐसा प्रतीत होता जैसे अभी-अभी स्वप्न देख रहा था और किसी ने सहसा उसे जगा दिया हो। उसने विवाह किया और एक लड़का भी उत्पन्न हुआ था। पत्नी बहुत ही सुन्दर थी। परन्तु नरेन्द्र को गृहस्थिक विषयों में किसी प्रकार का आकर्षण न था। तब भी उसका हृदय प्रेम का अथाह समुद्र था। वह हर समय

इसी धुन में रहता था कि चित्रकला में प्रसिद्धि प्राप्त करे। यही कारण था कि लोग उसे पागल समझते थे। किसी हल्की वस्तु को यदि पानी में ज़बर्दस्ती डुबो दो तो वह किसी तरह न डूबेगी—अवश्य ऊपर तैरती रहेगी। ठीक यही दशा उन लोगों की है जो अपनी धुन के पक्के होते हैं। वह सांसारिक दुःख-सुख में किसी तरह डूबना नहीं जानते। उनका हृदय हर समय कार्य की पूर्ति में संलग्न रहता है।

नरेन्द्र सोचते-सोचते अपने मकान के सामने आ खड़ा हुआ। उसने देखा कि द्वार के समीप उसका चार साल का बच्चा मुंह में उंगली डाले किसी गहरी चिन्ता में खड़ा है। पिता को देखते ही बच्चा दौड़ता हुआ आया और दोनों हाथों से नरेन्द्र को पकड़ कर बोला—"बाबू जी—"

"क्यों बेटा ?"

बच्चे ने पिता का हाथ पकड़ लिया और खींचते हुए कहा—"बाबू जी! देखो हमने एक मेंडक मारा है। वह लंगड़ा हो गया है —"

नरेन्द्र ने बच्चे को गोद में उठा कर कहा— "तो मैं क्या करूँ ? तू बड़ा पाजी है।"

बच्चे ने कहा— "वह घर नहीं जा सकता—लंगड़ा हो गया है, कैसे जाएगा ? चलो उसे गोद में उठा कर घर पहुँचा दो।"

नरेन्द्र ने बच्चे को गोद में उठा लिया और हंसते-हंसते घर में ले गया।

: ३ :

एक दिन नरेन्द्र को ध्यान आया कि इस बार प्रदर्शनी में किस प्रकार का चित्र देना चाहिये। कमरे की दीवार पर उसके हाथ के कितने ही पूर्ण चित्र लगे हुए थे। कहीं प्राकृतिक दृश्य, कहीं मनुष्य के शरीर की रूप रेखा और कहीं स्वर्ण की भाँति सरसों के खेत के पास हरियाली तथा जंगली मन मोहक दृश्यावलि, कहीं वह रास्ते जो छाया वाले वृक्षों के नीचे से टेढ़े तिरछे होकर नदी के पास जा मिलते थे। धूयें की भाँति गगन चुम्बी पहाड़ों की पंक्ति, जो तेज़ धूप में स्वयं झुलसी जा रही थी। सैंकड़ों पथिक धूप से जल भुन कर छाया वाले वृक्षों के समूह में शरणार्थी। इसी प्रकार के कितने ही दृश्य थे। दूसरी ओर अनेकों पक्षियों के चित्र थे। उन सब के मनोभाव उनके मुखों से प्रकट हो रहे थे। कोई गुस्से में भरा हुआ, कोई चिन्ता की अवस्था में, तो कोई प्रसन्न मुख।

कमरे के उत्तरीय भाग में खिड़की के समीप एक अपूर्ण चित्र लगा हुआ था। उसमें ताड़ के वृक्षों के समूह के समीप, सर्वदा मौन रहने वाली, छाया के आश्रय में एक सुन्दर नवयुवती नदी के श्याम वर्ण जल में अचल बिजली की भांति मौन खड़ी थी। उसके ओठों और मुख की रेखाओं में चित्रकार ने हृदय की पीड़ा अत्याधिक भर दी थी। ऐसा मालूम होता था मानो चित्र बोलना चाहता है, किन्तु यौवन अभी तक उसके शरीर पर पूरी तरह प्रस्फुटित न हुआ था।

इन सब चित्रों में चित्रकार के इतने दिनों की आशा और निराशा मिली हुई थी। परन्तु आज उन चित्रों की रेखाओं और रंग-रौग़न ने नरेन्द्र को अपनी ओर आकर्षित न किया। उसके

हृदय में बार-बार यही विचार आने लगे कि इतने दिनों उसने केवल बच्चों का खेल किया है। केवल कागज़ के टुकड़ों पर रंग पोते हैं। इतने दिनों से उसने जो कुछ रूप रेखा कागज़ पर खैंचीं थीं वह सब किसी प्रकार भी उसके हृदय को अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं। क्योंकि उसके विचार पहले की अपेक्षा बहुत उच्च थे। उच्च बल्कि बहुत उच्चतम हो कर चील की भाँति आकाश पर मंडलाना चाहते थे। यदि वर्षा ऋतु का सुहाना दिन हो तो क्या कोई शक्ति उसे रोक सकती थी। वह उस समय आवेश में आकर उड़ने की उत्सुकता में असीमित दिशाओं में उड़ जाता है। एक बार भी फिर कर नहीं देखता। अपनी पहली दशा पर किसी तरह भी सन्तुष्ट नहीं रहता। नरेन्द्र के हृदय में रह-रह कर यही विचार आने लगे। भावना और लालसा की झड़ी सी लग गई।

उसने निश्चय कर लिया कि इस बार ऐसा चित्र बनाएगा जिस से उसका नाम अमर हो जाए। वह इस वास्तविकता को सब के दिलों में बिठा देना चाहता था कि उसकी अनुभूति बचपन की अनुभूति नहीं है।

मेज़ पर सिर रख कर नरेन्द्र इसी प्रकार के विचारों का ताना बाना बुनने लगा। वह क्या बनाएगा? किस विषय पर? हृदय पर आघात होने से साधारण मनुष्य पर भी असाधारण प्रभाव पड़ता है। भावनाओं के कितने ही पूर्ण और अपूर्ण चित्र उसकी आंखों के सामने से सिनेमा की तस्वीरों की तरह चले गये। परन्तु किसी ने भी दमभर के लिये उसके ध्यान को अपनी ओर न खींचा। सोचते-सोचते सन्ध्या के अन्धियारे में शंख की मधुर ध्वनि ने उसको मस्त कर देने वाला गान सुनाया। इस स्वर लहरी से नरेन्द्र चौंक कर उठ खड़ा

हुआ। इसके पश्चात उसी अन्धकार में वह चिन्तन मुद्रा में कमरे के अन्दर पागलों की भाँति टहलने लगा। परन्तु व्यर्थ के कष्ट और निराशा से नरेन्द्र का हृदय दपर्ण मानो चूर चूर होने को था किन्तु महान प्रयत्न करने के पश्चात भी उसे कोई विचार न सूझा।

रात बहुत जा चुकी थी। अमावस्या की अन्धेरी में आकाश परलोक की भांति धुंधला प्रतीत होता था! नरेन्द्र कुछ खोया खोया सा पागलों की भांति उसी ओर ताकता रहा।

बाहर से रसोइये ने द्वार खटखटा कर कहा—"बाबू!"

चौंक कर नरेन्द्र ने पूछा—"कौन है?"

"बाबू भोजन तैयार है चलिये।"

झुंझलाए हुए नरेन्द्र ने कटुस्वर में कहा—"मुझे तंग न कर। जा मैं इस समय न खाऊँगा।"

इसके पश्चात उसने स्वयं को चिन्तन सागर में डुबो दिया। दुनिया में जिस को ख्याति प्राप्त करनें का व्यसन लग गया हो उस को चैन कहाँ।

: ४ :

एक सप्ताह बीत गया। इस सप्ताह में नरेन्द्र ने घर से बाहर कदम न निकाला। घर में बैठा सोचता रहता—किसी न किसी मन्त्र से तो साधना की देवी अपनी कला दिखाएगी ही।

इस से पूर्व किसी चित्र के लिए उसे विचार प्राप्ति में देर न लगती थी, परन्तु इस बार किसी तरह भी उसे कोई बात न सूझी। ज्यूं-ज्यूं दिन व्यतीत होते जाते थे वह निराश होता जाता था। केवल यही क्यों? कई बार तो उसने झुंझला कर सिर के बाल

नोच लिये । वह अपने आप को गालियाँ देता था, पृथ्वी पर पेट के बल पड़ कर बच्चों की तरह रोया भी था । परन्तु सब व्यर्थ ।

प्रातः काल नरेन्द्र मौन बैठा था कि मनमोहन बाबू के द्वारपाल ने आकर उसे एक पत्र दिया । उसने उसे खोलकर देखा । मास्टर जी ने उसमें लिखा था :—

प्रिय नरेन्द्र,

प्रदर्शनी होने में अब अधिक दिन शेष नहीं हैं । एक सप्ताह के अन्दर यदि चित्र न आया तो ठीक नहीं । तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हारा चित्र कितना बन गया है ?

योगेश बाबू ने चित्र चित्रित कर दिया है । मैंने देखा है सुन्दर है । परन्तु मुझे तुम से और भी अच्छे चित्र की आशा है । तुम से अधिक प्रिय मुझे और कोई नहीं । आशीर्वाद देता हूं । तुम अपने गुरु की लाज रख सको ।

इसका ध्यान रखना । इस प्रदर्शनी में यदि तुम्हारा चित्र अच्छा रहा तो तुम्हारी ख्याति में कोई बाधा न रहे गी । तुम्हारा परिश्रम सफल हो ।"

—मनमोहन

पत्र पढ़ कर नरेन्द्र और भी व्याकुल हुआ । केवल एक सप्ताह शेष है और अभी तक उसके मस्तिष्क में चित्र के विषय में कोई विचार ही नहीं आया । खेद है अब वह क्या करेगा ?

उसे अपने आत्म बल पर बहुत विश्वास था—इस समय वह विश्वास भी जाता रहा । इसी तुच्छ शक्ति पर वह दस व्यक्तियों में सिर उठाए फिरता रहा है ?

उसने सोचा था अमर कलाकार हो जाऊंगा। परन्तु वाह रे दुर्भाग्य ! अपनी अयोग्यता पर नरेन्द्र की आंखों में आंसू भर आये।

: ५ :

रोगी की रात जैसे आँखों में निकल जाती है उसकी वह रात इसी तरह समाप्त हुई। नरेन्द्र को इस का तनिक भी पता न हुआ। उधर वह कई दिनों से चित्र शाला ही में सोया था। नरेन्द्र के मुख पर जागरण के चिन्ह थे। उस की पत्नी दौड़ी-दौड़ी आई और शीघ्रता से उसका हाथ पकड़ कर बोली। "—अजी बच्चे को क्या हो गया है, आकर देखो तो !"

नरेन्द्र ने कहा—"क्या हुआ ?"

नरेन्द्र की पत्नी लीला ने हांपते हुए कहा—"शायद हैज़ा ! इस प्रकार खड़े न रहो, बच्चा बिल्कुल अचेत पड़ा है।"

बहुत ही अनमने मन से नरेन्द्र शयन कक्ष में प्रविष्ट हुआ।

बच्चा विस्तर से लगा पड़ा था। पलंग के चहुँ ओर उस भयानक रोग के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे थे। लाल रंग दो घड़ी में ही पीला हो गया था। सहसा देखने से यही ज्ञात होता था जैसे बच्चा जीवित नहीं। केवल उसके वक्ष के समीप कोई वस्तु धक-धक कर रही थी, और विशेषता इस क्रिया से ही जीवन के कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर होते थे।

बच्चे के सिराहने नरेन्द्र सिर झुका कर खड़ा हो गया।

लीला ने कहा—"इस तरह खड़े न रहो। जाओ जाकर

डाक्टर को बुला लाओ।" मां की आवाज़ सुनकर बच्चे ने आंखें मलीं, भर्राई हुई आवाज़ में बोला—"मां ! ओ माँ !"

"मेरा लाल ! मेरी पूंजी ! क्या कह रहा है ? कहते-कहते लीला ने दोनों हाथों से बच्चे को अपनी गोद से चिपटा लिया। मां के वक्ष पर सिर रख कर बच्चा फिर पड़ रहा।

नरेन्द्र के नेत्र सजल हो आये। वह बच्चे की ओर देखता रहा।

लीला ने उपालम्भमय स्वर में कहा—"अभी तक डाक्टर को बुलाने नहीं गये ?"

नरेन्द्र ने दबी आवाज़ से कहा—"एं·····डाक्टर ?

पति की आवाज़ का अस्वाभाविक स्वर सुनकर लीला ने चकित होते हुए कहा—"क्या ?"

"कुछ नहीं।"

"जाओ डाक्टर को बुला लाओ।"

"अभी जाता हूं।"

नरेन्द्र घर से बाहर निकला।

घर का द्वार बन्द हुआ। लीला ने आश्चर्य चकित हो कर सुना कि उसके पति ने बाहर से द्वार की जंजीर खींच ली। सोचती थी—"यह क्या ?"

: ६ :

नरेन्द्र चित्र शाला में प्रविष्ट हो कर एक कुर्सी पर बैठ गया। दोनों हाथों से मुंह ढाँप कर वह सोचने लगा। उसकी दशा देख कर मालूम होता था कि वह किसी तीव्र आत्मिक पीड़ा से

12179

पीड़ित है। चहुं ओर घनी सून्यता का राज्य था। केवल दीवार पर लगी हुई घड़ी कभी न थकने वाली गति से टक-टक कर रही थी और नरेन्द्र के सीने के अन्दर उसका हृदय मानो उत्तर देता हुआ कह रहा था। धक ! धक ! सम्भवतः उसके भयानक संकल्पों से परिचित होकर घड़ी और उसका हृदय परस्पर काना फूंसी कर रहे थे। सहसा नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। संज्ञाहीनता की अवस्था में कहने लगा—"क्या करूं ? ऐसा आदर्श फिर न मिलेगा। परन्तु·······वह तो मेरा पुत्र है।"

वह कहते-कहते रुक गया। मौन होकर सोचने लगा। सहसा मकान के अन्दर से सनसनाते हुए वाण की भाँति हाय की हृदयबेधक आवाज़ उसके कानों में पहुंची।

"मेरे लाल ! तू कहाँ गया ?"

जिस प्रकार चिल्ला टूट जाने से कमान सीधी हो जाती है, चिन्ता और व्याकुलता से नरेन्द्र ठीक उसी तरह सीधा खड़ा हो गया। उसके मुख पर लाली का चिह्न तक न था। फिर कान लगा कर उसने आवाज़ सुनी, वह समझ गया कि बच्चा चल वसा।

मन ही मन में बोला—"भगवान ! तुम साक्षी हो, मेरा कोई अपराध नहीं।"

इसके बाद वह अपने सिर के बालों को मुट्ठी में लेकर सोचने लगा। जैसे कुछ समय पश्चात् ही मनुष्य निद्रा से चौंक उठता है उसी प्रकार चौंक कर जल्दी-जल्दी मेज़ पर से कागज़, तूलिका और रंग आदि लेकर वह कमरे से बाहर निकल गया।

शयन कक्ष के सामने एक खिड़की के समीप आकर वह अकचका कर खड़ा हो गया। कुछ सुनाई देता है

क्या ? नहीं सब खामोश हैं। उस खिड़की से कमरे का आन्तरिक भाग दिखाई पड़ रहा था। झाँक कर भय से थर-थर काँपते हुए उसने देखा तो उस से उसके सारे शरीर में काँटे से चुभ गये। बिस्तर उलट-पुलट हो रहा था। पुत्र से रिक्त गोद किये माँ वहीं पड़ी हुई तड़प रही थी।

और इसके अतिरिक्त ......माँ कमरे में पृथ्वी पर लोटते हुए, बच्चे के मृत शरीर को दोनों हाथों से वक्षास्थल के साथ चिमटाए, बाल बखेरे, नेत्र विस्फारित किये बच्चे के निर्जीव ओठों को बार-बार चूस रही थी।

नरेन्द्र की दोनों आँखों में जैसे किसी ने दो सलाखें चुभो दी हों। उसने ओंठ चबा कर कठिनता से स्वयं को संभाला और इसके साथ ही कागज़ पर पहली रेखा खेंची। उसके सामने कमरे के अन्दर वही भयानक दृश्य उपस्थित था। संभवतः संसार के किसी अन्य चित्रकार ने ऐसा दृश्य सम्मुख रख कर तूलिका न उठाई होगी।

देखने में नरेन्द्र के शरीर में कोई गति न थी, परन्तु उसके हृदय में कितनी वेदना थी ? उसे कौन समझ सकता है, वह तो पिता था।

नरेन्द्र जल्दी-जल्दी चित्र बनाने लगा। जीवन भर चित्र बनाने में इतनी जल्दी उसने कभी न की थी। उसकी उंगलियाँ किसी अज्ञात शक्ति से आज अपूर्व शक्ति प्राप्त कर चुकी थीं। रूप-रेखा बनाते हुए उसने सुना—"बेटा ओ बेटा ! बातें करो-बातें करो, ज़रा एक बार देख तो लो ?"

नरेन्द्र ने अस्फुट स्वर में कहा—"उफ़, यह असहनीय है।" और उसके हाथ से तूलिका छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

किन्तु उसी समय तूलिका उठा कर वह पुनः चित्र बनाने लगा। रह-रह कर लीला का क्रन्दन रुदन कानों में पहुँच कर हृदय को छेदता और रक्त की गति को मन्द कर रहा था। उसके ओंठ स्थिर होकर उसकी तूलिका की गति को रोके देते थे।

इसी प्रकार पल पर पल बीतने लगे।

मुख्य द्वार से अन्दर आने के लिये नौकरों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था, परन्तु नरेन्द्र मानो इस समय संसार और संसार की आवाज़ की ओर से बहरा हो चुका था।

वह कुछ भी न सुन सका। इस समय वह एक बार कमरे की ओर और एक बार चित्र की ओर देखता था, एक बार रंग में तूलिका डबोता और फिर कागज़ पर चलाता था।

वह पिता था-परन्तु कमरे के अन्दर पत्नी के हृदय से लिपटे हुए मृत बच्चे की याद भी वह धीरे-धीरे भूलता जा रहा था।

सहसा लीला ने उसे देख लिया। दौड़ती हुई खिड़की के समीप आकर दुखित स्वर में बोली—"क्या डाक्टर को बुलाया ? ज़रा एक बार आकर देख तो लेते कि मेरा लाल जीवित है या नहीं.........यह क्या ? चित्र बना रहे हो ?"

चौंक कर नरेन्द्र ने लीला की ओर देखा। वह लडखडा कर गिर रही थी।

बाहर से द्वार खटखटाने और बार-बार चिल्लाने पर भी जब कपाट न खुले, तो रसोइया और नौकर दोनों डर गये। वह अपना काम समाप्त करके प्रायः सन्ध्या की बेला घर चले जाते थे और प्रातःकाल काम करने आ जाते थे। प्रति दिन लीला या नरेन्द्र दोनों में से कोई न कोई द्वार खोल देते थे, आज इतना

चिल्लाने और खटखटाने पर भी द्वार न खुला। इधर रह-रह कर लीला के क्रन्दन की ध्वनि भी कानों में आ रही थी।

उन लोगों ने मुहल्ले के कुछ व्यक्तियों को बुलाया। अन्त में सब ने सलाह करके द्वार तोड़ डाला।

सब आश्चर्य-चकित होकर मकान में घुसे। ज़ीने से चढ़ कर देखा कि दीवार का सहारा लिये, दोनों हाथ जंघाओं पर रखे, नरेन्द्र सिर नीचा किये हुए बैठा है।

उनके पाँव की आहट से नरेन्द्र ने चौंक कर मुंह उठाया। उसके नेत्र रक्त की भाँति लाल थे। थोड़ी देर पश्चात् वह ठहाका मार कर हँसने लगा और सामने लगे चित्र की ओर उंगली दिखा कर बोल उठा—"डाक्टर ! डाक्टर ! मैं अमर हो गया।"

: ७ :

दिन बीतते गये-प्रदर्शनी आरम्भ हो गई।

प्रदर्शनी में देखने की कितनी ही वस्तुएं थीं, परन्तु दर्शक विशेषतः एक ही चित्र पर झुके पड़ते थे। चित्र छोटा सा था और अधूरा भी, उसका नाम था "अन्तिम प्यार"

चित्र में चित्रित किया हुआ था कि एक मां बच्चे का मृत शरीर हृदय से लगाए हुए अपने दिलके टुकड़े के चंदा से मुख को बार-बार चूम रही है।

शोक और चिन्ता में डूबी हुई मां के मुख, नेत्र और शरीर में चित्रकार की तूलिका ने एक ऐसा सूक्ष्म और दर्द नाक चित्र चित्रित किया कि जो देखता था उसी की आँखों से आंसू निकल पड़ते थे। चित्र की रेखाओं में इतनी अधिक सूक्ष्मता से दर्द

भरा जा सकता है, यह बात इससे पहले किसी के ध्यान में न आई थी।

इस दर्शक समूह में कितने ही चित्र कार थे। उन में से एक ने कहा—"देखिये योगेश बाबू आप क्या कहते हैं।"

योगेश बाबू उस समय मौन धारण किये चित्र की ओर देख रहे थे, सहसा प्रश्न सुनकर एक आंख बन्द करके बोले—"यदि मुझे पहले से ज्ञात होता तो मैं नरेन्द्र को अपना गुरु बनाता।"

दर्शकों ने धन्यवाद साधुवाद और वाह-वाही की झड़ी लगा दी। परन्तु किसी को भी यह मालूम न हुआ कि उस सज्जन पुरुष का मूल्य क्या है ? जिसने इस चित्र को चित्रित किया है।

किस प्रकार चित्रकार ने स्वयं को धूलि में मिलाकर रक्त से इस चित्र को रंगा है। उसकी यह दशा किसी को भी ज्ञात न हो सकी।

-:o:-

धन की भेंट

वृन्दावन कुन्दू तीव्र क्रोधावेश में अपने पिता के पास आकर कहने लगा "—मैं इसी समय आप से विदा होना चाहता हूँ।"

उसके पिता जगन्नाथ कुन्दू ने घृणा प्रकट करते हुए कहा—" अभागे ! कृतघ्न ! मैंने जो रुपया तेरे खाने कपड़े पर खर्च किया है, जिस समय तू वह चुका दे फिर ऐसी धमकी देना।"

जिस प्रकार का भोजन जगन्नाथ के घर मिला करता था उस पर कुछ अधिक व्यय न होता था। भारत के प्राचीन ऋषि मितव्ययता के लिये ऐसी वस्तुओं का प्रबन्ध कर लिया करते थे। जगन्नाथ के व्यवहार से ज्ञात होता था कि वह इस विषय में उन ऋषियों ही के निर्मित आदर्शों पर चलना पसन्द करता था। यद्यपि वह पूर्ण रुप से इस आदर्श को निबाहने में असमर्थ था, तो इसका कारण कुछ तो यह समझा जा सकता है कि जिस समाज में उसका रहन-सहन था वह अपने प्राचीन आदर्शों से बहुत पतित हो चुकी थी, और कुछ यह कि उसकी आत्मा को शरीर के साथ मिलाए रखने के विषय में प्रकृति की उत्तेजना तीव्र और अयुक्ति संगत थी।

जब तक वृन्दावन कुंवारा था, उसका निर्वाह जैसे-तैसे चलता रहा, किन्तु विवाह के पश्चात उसने सीमा से बाहर इस उत्तम

और सुन्दर आदर्श को, जो उसके महामना पिता ने निर्मित कर रखा था, त्याग करना शुरु कर दिया। ऐसा ज्ञात होता था कि सांसारिक सुख ऐश्वर्य के सम्बन्ध में उसके विचार आतिक्कता से शारीरिकता की ओर परिवर्तित हो रहे हैं और खाने पीने की न्यूनता से उसे भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि जो कष्ट सम्मुख आते हैं, इसने उन्हें सहना पसन्द न करके संसार के साधारण व्यक्तियों के आचरण का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया।

जब से बृन्दाबन ने अपने पिता के निर्मित उच्च आदर्श को त्यागा तभी से पिता और पुत्र में कलह आरम्भ हो गई। इस कलह ने चरम सीमा का रुप उस समय-धारण किया, जब बृन्दावन की पत्नी अधिक रुग्न हुई-और उस की चिकित्सा के लिये एक कविराज (वैद्य) बुलाया गया। यहाँ तक भी व्यवहार क्षमा करने योग्य था, किन्तु जब वैद्यराज ने रोगी के लिए एक अधिक मूल्य की औषधि का निर्णय किया, तो जगन्नाथ ने समझ लिया कि वैद्यराज अयोग्य हैं। वैद्यक के नियमों से बिल्कुल अपरिचित। बस उसने उसी समय उसको मकान से बाहर निकलवा दिया। बृन्दावन ने पहले तो पिता से काफी अनुनय विनय की-कि औषधि जारी रहे-फिर झगड़ा भी किया, परन्तु पिता के कान पर जूं तक न रैंगी-अन्त में जब पत्नी स्वर्ग सिधार गई तो बृन्दावन का क्रोध अधिक बढ़ गया और उसने अपने पिता को उसका प्राण घातक निर्धारित किया।

जगन्नाथ ने स्वभावानुसार उसको समझाने का बहुत प्रयत्न किया और कहा—"तुम कैसी ना समझी की बातें करते हो-क्या लोग विभिन प्रकार की औषधि खाकर नहीं मरते-यदि मूल्यवान औषधियाँ ही मनुष्य को जीवित रख सकतीं तो बड़े राजा महा-

राजा क्यों मरते ? इस से पहिले तुम्हारी माँ और दादी मर चुकी हैं, यह मर गई तो क्या हुआ। समय आने पर प्रत्येक व्यक्ति को कूच करना है।"

बृन्दावन यदि इस प्रकार दुःखी और सचेत तथा वास्तविक परिणाम पर पहुँचने में योग्य न होता, तो संभव था कि वह इन बातों से कुछ साँत्वना प्राप्त कर लेता। इस से पहले मरने के समय उसकी माँ और दादी ने भी औषधि न पी थी-और औषधि सेवन न करने की यह रीति बहुत पहिले से इस खान्दान में चली आती है। नई पौद का चरित्र इतना बिगड़ चुका है कि वह पुराने ढ़ंग पर मरना भी पसन्द नहीं करती।

जिस युग की चर्चा हम कर रहे हैं, उन दिनों अंग्रेज भारत में नये-नये आये थे। किन्तु उस समय भी इस देश के बड़े बूढ़े, अपनी औलाद के स्वभाव विरुद्ध ढंग पर आश्चर्य और विकलता प्रकट किया करते थे। और अन्त में जब उनकी एक भी न चलती तो अपने मुंह से लगे हुए हुक्कों से साँत्वना प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे।

मतलब यह है कि जिस समय मामला चरम सीमा को पहुँच गया तो बृन्दावन से न रहा गया और उसने आवेश तथा विकलता के साथ अपने पिता से कहा—"मैं जाता हूँ।"

दूसरी ओर वृन्दावन ने भी कहा—"मैं अगर तुम्हारी दमड़ी तक को हाथ लगाऊँ, तो अपने आप को अपनी माँ के साथ पाप कर्म करने वाला समझूंगा।"

गांव के निवासियों ने अपने जैसे विचारों के, लम्बे चौड़े वाद विवाद के पश्चात् उस छोटे से परिवर्तन भरे झगड़े को सन्तोष पूर्वक देखा। जगन्नाथ ने चूंकि अपने बेटे को अपनी सम्पत्ति से वंचित कर दिया था, अतः प्रत्येक व्यक्ति उसे साँत्वना देने का प्रयत्न करता था। वे सब इस विषय में सहमत थे कि केवल पत्नी की खातिर पिता के साथ झगड़ा करने का दृश्य इस गये गुज़रे युग में ही देखा जा सकता है। इस के सम्बन्ध में वह स्वयं जो कारण बताते थे वह भी बहुत असंगत थे। वे कहते थे कि यदि किसी की पत्नी मर जाए तो बड़ी सरलता से दूसरी प्राप्त कर सकता है, पिता मर जाए तो संसार भर के धन ऐश्वर्य के बदले में भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

इस बात में सन्देह नहीं कि उनका उपदेश हर प्रकार से ठीक था, किन्तु हमें सन्देह है कि दूसरा पिता प्राप्त करने की पीड़ा उस पथ भ्रष्ट बेटे को कहां तक प्रभावित कर सकती थी। इसके विरुद्ध हमारा विचार यह है कि ऐसा अवसर आता तो वह उसे ईश्वरीय अनुकम्पा में सम्मलित समझता।

उसे विकल कर देता था कि इसमें विष न मिला हुआ हो। यह चिन्ता किसी सीमा तक वृन्दावन की पत्नी के स्वर्गबास पर दूर हो गई थी, किन्तु अब वह बिल्कुल ही न रही।

किन्तु जिस प्रकार घने अन्धियारे बादलों में चमकीली बिजली, और बड़े तूफानी समुद्र में भी बहु मूल्य रतन विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार बूढ़े जगन्नाथ के कठोर हृदय में भी एक निर्बलता शेष थी। वृन्दावन जाते समय अपने साथ अपने चार वर्षीय पुत्र गोकुलचन्द को भी ले गया था। चूंकि उसकी खूराक और वस्त्रों का खर्च बहुत न्यून था इस लिये जगन्नाथ को उससे बहुत प्रेम था। जाते समय जब वृन्दावन उसे अपने साथ ले गया तो सब से पहले दुख और पछतावे की अपेक्षा उसने अपने मन में हिसाब करना शुरु किया। कि इन दोनों के चले जाने से खर्च में कितनी कमी हो जाएगी। इस बचत की वार्षिक रकम कहां तक पहुँचेगी, और इस बचत को यदि किसी रकम का सूद समझा जाए तो उसका मूलधन कितना हो सकता है?

जब तक गोकुलचन्द घर में था वह अपने चाँचाल्य से जगन्नाथ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित रखता था। परन्तु उसके चले जाने पर कुछ दिनों में ही बूढ़े को ऐसा अनुभव होने लगा कि घर काटने को दौड़ता है। इससे पहिले जिस समय जगन्नाथ पूजा पाठ में तल्लीन होता तो गोकुलचन्द उसे छेड़ा करता था। भोजन करते समय उसके आगे से रोटी या चावल उठा कर भाग जाता और स्वयं खा लेता। और वह जब आय व्यय लिखने बैठता तो उसकी दवात लेकर दौड़ जाता, किन्तु अब

उसके चले जाने पर ये सब बातें भी दूर हो गईं। जीवन में प्रतिदिन का क्रिया कलाप उसे भार अनुभव होने लगा। उसे ऐसा मालूम होता था कि इस प्रकार का विश्राम भविष्य के संसार में ही सहन किया जा सकता है। जब कभी वह गोकुल की चंचलता को स्मरण करता तो रजाइयों में उसके हाथों के छिद्रों या दरी पर कलम दवात से उसके बनाए हुए भद्दे चित्र देखता, तो उसका हृदय कष्ट के मारे बैठ जाता। जगन्नाथ को अपने सोने के कमरे में एक कोने के अन्दर पड़ी हुई गोकुल की धोती के टुकड़े दिखाई पड़े, तो सहसा उसके नेत्रों से अश्रु बह निकले। यही वह धोती थी जिसे गोकल ने दो वर्ष के अल्प समय में फाड़ दिया था, तो जगन्नाथ ने उसे झिड़का और बुरा भला कहा था। किन्तु अब उसने इन टुकड़ों को उठा कर बड़ी सावधानी से अपने सन्दूक में रख लिया और इस बात की सपथ खाली कि यदि गोकुल उसके जीते जी फिर कभी वापस आ गया तो चाहे वह हर वर्ष एक धोती फाड़े, वह उस से कभी रुष्ट न होगा।

परन्तु गोकुल को न वापस आना था न आया। गरीब जगन्नाथ दिन प्रतिदिन वृद्ध होता जा रहा था और उसको खाली घर अधिक से अधिक भयावना दिखाई पड़ता था।

अन्त में दशा यहां तक पहुंची कि वह सन्तोष से घर में बैठ भी न सकता। मध्यान्ह जब गांव के सब लोग अपने-अपने घरों में सोए होते तो जगन्नाथ नारियल हाथ में लिये गलियों में घूमता दिखाई देता। गांव के लड़के जब कभी उसे अपनी ओर आता देखते तो खेल छोड़ कर दूर स्थान पर जा खड़े होते, और इस प्रकार की पद्यपंक्ति गाने लगते जिन में एक स्थानीय

कवि ने वृद्ध जगन्नाथ की मितव्ययी स्वभाव की प्रशंसा की थी। कोई व्यक्ति भय के मारे उसका वास्तविक नाम इस डर से ज़बान पर न लाता था कि कहीं उसे उस रोज़ अन्न जल प्राप्त न हो। अतः लोगों ने उसके अनेक प्रकार के नाम रख छोड़े थे। वृद्ध उसे जगन्नाश कहा करते थे, परन्तु मालूम नहीं छोटे लड़के उसे चिड़ियल क्यों कहते थे। संभव है इसका कारण यह हो कि उस का चर्म सूखी और शरीर रक्त हीन दिखाई देता था। इन्ही कारणों से वह प्रेत आत्माओं के समान समझा जाता था।

: २ :

एक दिन मध्याह्न समय जब जगन्नाथ स्वभावानुसार गाँव की गलियों में आम के छतनारे वृक्षों के नीचे अपना नारियल हाथ में लिए फिर रहा था। उसने देखा कि एक लड़का जो देखने में अपरिचित मालूम होता था किन्तु गाँव के लड़कों का मुखिया बना हुआ उन्हें कोई नई शरारत समझा रहा है। उसके महान चरित्र और उसकी कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित होकर सब लड़कों ने इस बात का नियम कर लिया था कि हर काम में उसकी आज्ञानुसार आचरण करेंगे। दूसरे लड़कों की भाँति वह वृद्ध जगन्नाथ को अपनी ओर आता देख कर भय से भागा नहीं, बलिक उसके समीप जाकर चादर झाड़ने लगा। उसी समय उसमें से एक जीवित छिपकली निकल कर वृद्ध के शरीर पर गिरी और उसकी पीठ की ओर से नीचे उतर कर वन की ओर भाग गई। भय से वृद्ध के हाथ पाँव काँपने लगे। यह देख कर सब लड़के बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नता से उच्च स्वर में घोष करने लगे। वृद्ध जगन्नाथ बड़बड़ाता और गालियाँ देता

हुआ बहुत दूर निकल गया। किन्तु वह दुपट्टा जो प्राय: उसके कन्धों पर पड़ा रहा करता था, सहसा गायब हो गया और दूसरे ही क्षण उस अपरिचित लड़के के सिर पर बन्धी हुई पगड़ी के रूप में दिखाई दे रहा था ।

लड़के की ओर से इस प्रकार की चेष्टा देख कर जगन्नाथ पहले तो कुछ चिन्तित हुआ, फिर वह गाँव की प्रति दिन की कठोरता को इस प्रकार पराजित होते देख कर प्रसन्न भी हुआ। काफ़ी दिनों से लड़के उसकी छाया ही देख कर दूर भाग जाया करते थे और उसे उन से बोलने तथा बात चीत करने का अवसर ही न मिलता था । अपरिचित लड़का इस शरारत के पश्चात् दूर भाग गया था, किन्तु बहुत से वचन और साँत्वना देने के पश्चात् अन्त में वह उस वृद्ध के समीप आया। फिर दोनों में निम्न बातें होने लगीं ।

"बेटा तुम्हारा नाम क्या है ?"

"नितईपाल ।"

"घर कहाँ है ?"

"मैं नहीं बताऊंगा ।"

"क्यों नहीं बतलाओगे ?"

"मैं घर से भाग कर आया हूँ ।"

"भागे क्यों थे ?"

"मेरा पिता मुझे स्कूल जाने को कहता था ।"

जगन्नाथ के हृदय में विचार आया—ऐसे होनहार लड़के को स्कूल भेजना कैसी व्यर्थ की बात है। वह कैसा लड़के के भविष्य के परिणाम की ओर से आँखें मीचे रहने वाला पिता होगा, जो इसे स्कूल भेजना चाहता है।

थोड़ी देर पश्चात् वह कहने लगा—"अच्छा तुम मेरे घर रहना पसन्द करोगे ?"

लड़के ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं।" उसी दिन से वह लड़का उसके घर में रहने लगा। उसे घर में प्रवेश करते हुए इतना भी भय न हुआ, जितना अन्धेरे में किसी वृक्ष के नीचे जाने से हो सकता है। इतना ही नहीं, बल्कि उसने अपने वस्त्र और भोजन के विषय में ऐसे निर्भयता पूर्ण ढंग पर प्रश्न करने आरम्भ किये जैसे वह उस घर में वर्षों से रहता हुआ अपना खर्च दे चुका हो। यदि कोई वस्तु उसके इच्छानुसार न होती थी तो वह जगन्नाथ से झगड़ा आरम्भ कर देता था। जगन्नाथ अपने बेटे को तो डरा धमका भी लेता था, परन्तु उसे वश में लाना सहज न था। उसे उसकी हरेक बात माननी पड़ती थी।

गाँव के लोग आश्चर्य में थे कि जगन्नाथ ने नितईपाल को क्यों इस प्रकार सिर पर चढ़ा रखा है। यह सर्व विदित था कि वृद्ध अब कुछ दिन नहीं तो कुछ सप्ताह का अतिथि है। और वह इस बात को सोच कर बहुत दुखित होते थे कि उसके स्वर्ग सिधारने पर उसकी सम्पत्ति का अधिकारी यही लड़का होगा। वे सब इस बात पर लड़के से बहुत ईर्षा करने लगे थे। उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया कि उसे अवश्य हानि पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु वृद्ध उसकी ऐसी निगरानी रखता था जैसे वह उसकी पसली की हड्डी हो।

कभी-कभी लड़का धमकी देकर कहता—"मैं घर चला जाऊंगा।" ऐसे अवसर पर वृद्ध लोभ लालच का जाल बिछा कर कहता—"मैं अपनी सारी सम्पत्ति तुम को ही दूँगा।" लड़का हर प्रकार

से कम आयु का था, तब भी इस वचन के महत्व को खूब समझता था।

गाँव वालों से और कुछ न हो सका तो उन्होंने उस लड़के के बाप के सम्बन्ध में जाँच आरम्भ की। उनको यह सोच कर बहुत दुख होता था कि उसके माता-पिता उसकी याद में दुखी होंगे। लड़का बड़ा चंचल है, जो उन्हें इस प्रकार छोड़ कर भाग आया। वे इसे हज़ार-हज़ार गालियाँ देते होंगे। किन्तु यह सब बातें वे जिस आवेश में करते थे इस से स्पष्ट प्रतीत होता था कि वह न्याय नहीं, बल्कि ईर्षा से काम ले रहे हैं।

एक दिन वृद्ध को किसी बटोही की ज़बानी ज्ञात हुआ कि दामोदर पाल अपने बेटे की खोज में समीप के गाँव और कस्बों में फिर रहा है, और कुछ ही समय में वह इस गाँव में आया चाहता है। नितई ने जब यह बात सुनी तो प्राकृतिक नियम के अनुसार उसके हृदय के प्रेम में आवेश आया। वह उद्विग्नता की दशा में धन सम्पत्ति छोड़ कर अपने पिता के पास जाने को तैयार हो गया। जगन्नाथ उसे रोकने के लिये प्रत्येक संभव रीति से प्रयत्न करता था। अतः उसने कहा—"तुम अपने पिता के पास जाओगे तो वह तुम्हें पीटेगा, मैं तुम्हें एक ऐसे स्थान पर छुपा दूंगा कि किसी को भी तुम्हारा पता न मिल सके, यहां तक कि गाँव वाले भी मालूम न कर सकेंगे।"

इस बात से लड़के के हृदय में आश्चर्य उत्पन्न हुआ और वह कहने लगा—"बाबा! मुझे कहाँ छुपाओगे? भला वह स्थान तो मुझे दिखा दो।"

जगन्नाथ ने उत्तर दिया—"यदि वह स्थान मैं इस समय तुम्हें दिखा दूं तो लोगों को खबर हो जाएगी, रात हो जाने दो।"

बच्चों में आश्चर्य जनक स्थान देखने की उत्कट लालसा होती है, नितई उसी तरह यह बात सुन कर प्रसन्न हुआ। उसने अपने हृदय में विचारा कि जब मेरे पिता मेरी खोज़ करने के पश्चात् वापस चले जाएंगे तो मैं दोड़ लगा कर लड़कों के साथ आँख मिचोली खेला करूँगा और कोई मालूम न कर सकेगा कि मैं कहाँ छुपा हूँ—वास्तव में उस समय बड़ा आनन्द होगा। पिता जी सम्पूर्ण गाँव छान मारेंगे और मुझे कहीं न पा सकेंगे, बड़ी दिल्लगी होगी।

मध्यान्ह के समय जगन्नाथ लड़के को कुछ समय के लिए मकान में बन्द करके कहीं चला गया। उसके वापस आने पर नितई ने उससे इतने प्रश्न किये कि वह परेशान हो गया।

अन्त में जब रात हुई तो नितई कहने लगा—बाबा अब तो वह स्थान मुझ को दिखा दो।"

जगन्नाथ ने उत्तर दिया—"अभी रात नहीं हुई।"

इसके कुछ समय पश्चात् लड़के ने फिर कहा—"बाबा अब रात बहुत हो गई है, अब तो चलो।"

जगन्नाथ ने धीरे से कहा—"अभी गाँव के लोग सोए नहीं हैं।"

नितई फिर एक क्षण के लिये रुका और बोला—"बाबा! इस समय तो सब लोग सो गये हैं, आओ अब चलें।"

रात बहुत जा चुकी थी। ग़रीब लड़का इतनी देर तक कभी न जागा था, इसलिये उसको जागे रहने में बड़ी कठिनाई सम्मुख आ पड़ी थी। अन्त में आधी रात के समय जगन्नाथ लड़के की बाँह पकड़ कर स्वपनिल गाँव की अन्धेरी गलियों से रास्ता टटोलता बाहर निकला। चहुँ ओर सून्यता थी, कभी-

कभी कोई कुत्ता भौंकने लगता तो और कुत्ते भी उसके साथ मिल कर भौंकना आरम्भ कर देते। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं उनके पाँव की चाप से कोई पक्षी वृक्ष की टहनी से पंख फड़फड़ाता और उड़ ज.ता था। नितई भय से काँप रहा था किन्तु. जगन्नाथ ने उसका हाथ दृढ़ता से पकड़ा हुआ था।

कई खेतों में से होकर अन्त में ये लोग जंगल में प्रविष्ट हुए। यहाँ एक जीर्ण मन्दिर खड़ा हुआ था। जिस में किसी भी देवता की मूर्ति दिखाई न पड़ती थी।

नितई ने उसे देखकर निराशा भरे स्वर में कहा—"बस यही स्थान था?"

यह स्थान उसकी कल्पना से सर्वथा भिन्न था। क्योंकि उसमें कोई आश्चर्य विद्यमान न था। जब से वह घर से भागा था अनेक बार ऐसे खंडुर मन्दिरों में रातें व्यतीत कर चुका था। इतना होने पर भी आँख मिचोली खेलने के लिए यह स्थान सुन्दर था अर्थात् ऐसा कि उसके साथ खेलने वाले लड़के वहाँ उसकी खोज न कर सकते थे।

जगन्नाथ ने फ़र्श के बीच से एक पत्थर की सिल उठाई। उसके नीचे आश्चर्य चकित लड़के को एक तहखाना दिखाई दिया। जिस में एक मद्धम सा दीप जल रहा था। भय और आश्चर्य दोनों बातें उसके हृदय पर जमी हुई थीं। अन्दर एक बाँस की सीढ़ी खड़ी थी। जगन्नाथ नीचे उतरा, और नितई भी उसके पीछे-पीछे हो लिया।

नीचे उतर कर लड़के ने इधर-उधर देखा तो उसे चारों ओर पीतल के टोकने पड़े हुए दिखाई दिये। उनके मध्य में एक आसन

बिछा हुआ था और सामने थोड़ा सिन्दूर, घिसा हुआ चन्दन, कुछ जंगली फूल और पूजा की शेष सामग्री रखी हुई थी। लड़के ने अपनी जिज्ञासा पूर्ति के लिए उन टोकनों में से कुछ के अन्दर हाथ डाला, और जब बाहर हाथ निकाल कर देखा तो मालूम हुआ कि उन में रुपये और सोने की मोहरें भरी हुई हैं। इतने में वृद्ध जगन्नाथ ने नितई से कहा—"नितई मैंने तुम से कहा था कि मैं अपनी सारी धन सम्पत्ति तुम्हें दे दूंगा, मेरे पास कोई बहुत अधिक रुपये नहीं हैं, किन्तु जो कुछ भी है वह इन पीतल के टोकनों में भरा हुआ है और यह सब मैं आज तुम्हारे हवाले करना चाहता हूँ।"

नितई प्रसन्नता के मारे उछल पड़ा और बोला—"सब ! तुम इन में से एक रुपया भी अपने पास न रखोगे ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया—"यदि मैं इस में से कुछ लूं तो भगवान करे मेरा वह हाथ कोढ़ी हो जाए—किन्तु यह सम्पत्ति मैं तुम्हें एक शर्त पर देता हूँ। यदि कभी मेरा पोता गोकुल चन्द या उस का भी बेटा, पोता या परपोत्रा या उसकी औलाद में से कोई व्यक्ति भी इस रास्ते से होकर जाए तो तुम्हारे लिए अनिवार्य होगा कि यह सारी सम्पत्ति, एक-एक रुपया और सोने की मोहरें तक उसको सौंप दो।"

लड़के ने थोड़ा ध्यान से सोचा और निश्चय के साथ विचारा कि वृद्ध पागल हो गया है। फिर कहने लगा—"बहुत अच्छा, मैं ऐसा ही करूंगा।"

जगन्नाथ ने कहा—"बस तो इस स्थान पर बैठ जाओ।"

"क्यों ?"

"तुम्हारी पूजा की जाएगी।"

लड़के ने चकित होकर पूछा—"पूजा किस लिये ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया--"यही रीति है।"

लड़का उछल कर तुरन्त आसन पर बैठ गया। वृद्ध जगन्नाथ ने उसके माथे पर चन्दन लगाया, भृकुटियों के मध्य सिन्दूर की बिन्दी लगा दी, जंगली पुष्पों का हार उसके गले में डाला और कुछ मन्त्र उच्चारण करने लगा।

बेचारा नितई देवता की भाँति आसन पर बैठा-बैठा उकता गया, क्योंकि उसकी पल्कें नींद से भारी हो रही थीं। आखिर को उसने घबरा कर कहा—"बाबा !"

परन्तु जगन्नाथ उत्तर दिये बिना ही मन्त्र पढ़ता रहा।

आखिर को मन्त्रों का सिलसिला समाप्त हुआ और जगन्नाथ ने बड़ी कठिनाई से एक टोकने को खैंच कर लड़के के सम्मुख रखा और ये शब्द विवशता से उसके मुख से कहलवाए—"मैं सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस सारे कोष को गोकुल चन्द कुन्दू या वृन्दावन कुन्दू वल्द जगन्नाथ कुन्दू या गोकुल चन्द कुन्दू के बेटे, पोते, पड़पोते या उसकी औलाद के किसी व्यक्ति को जो इस का वास्तविक और योग्य उत्तराधिकारी होगा, दे दूंगा।"

अनेक बार इन शब्दों के कहने में भोले लड़के की चेतना जाती रही और कंठ सूखने लगा।

जैसे तैसे यह रस्म समाप्त हुई तो गुफ़ा की वायु दीपक के धूंवे और उन दोनों के साँस के कारण बुरी मालूम होने लगी। लड़के नितई को अपना कंठ मिट्टी की भाँति सूखा और हाथ पाँव जलते हुए अनुभव हो रहे थे। बेचारे का दम घुटा जा रहा था।

दीपक धीरे-धीरे मद्धम होता गया, यहाँ तक कि एक अन्तिम हिचकोला लेकर बुझ गया। इसके पश्चात् अन्धेरा। नितई को ऐसा लगा कि वृद्ध जल्दी-जल्दी सीढ़ी के ऊपर चढ़ रहा है। उसने घबरा कर पूछा—" बाबा ! तुम कहाँ जा रहे हो ?"

जगन्नाथ ने निरन्तर ऊपर की ओर चढ़ते हुए उत्तर दिया—"मैं अब जाता हूँ, तुम यहाँ रहो, यहां तुम्हें कोई ढूंढ न सकेगा। वृन्दावन के बेटे और जगन्नाथ के पोते गोकुलचन्द का नाम याद रखना।"

इसके पश्चात् उसने ऊपर जाकर सीढ़ी खेंच ली। लड़के ने अवरुद्ध और दयनीय स्वर में कहा—"मैं अब अपने पिता के पास जाना चाहता हूँ, यहाँ मुझे भय लगता है।"

जगन्नाथ ने उसकी परवाह न करते हुए गुफ़ा के मुंह पर पत्थर की सिला रख दी। इसके पश्चात् दोनों जंघाओं को मोड़ कर-झुक कर अपना कान पत्थर के समीप लगा कर सुनने लगा। अन्दर से आवाज़ आई "बाबा जी ! बाबा जी !" फिर किसी भारी वस्तु के फ़र्श पर गिरने की आवाज़ सुनाई दी और इसके बाद सून्यता छा गई।

इस प्रकार अपनी सम्पत्ति उसको सौंप कर वृद्ध जगन्नाथ ने जल्दी-जल्दी पत्थर के ऊपर मिट्टी डालनी आरम्भ कर दी। उस पर उसने टूटी-फूटी ईंटें और चूना रख दिया और फिर मिट्टी बिछा कर उसमें जंगली घास और बूटियों की जड़ें गाड़ दीं।

रात संभवतः समाप्त हो चुकी थी। परन्तु वह उस स्थान से हट कर घर न जा सका, रह-रह कर अपना कान पृथ्वी पर लगाता और आवाज़ सुनने का प्रयत्न करता था। ऐसा मालूम होता

था कि अब भी उस गुफ़ा के अन्दर या पृथ्वी की अथाह गहराईयों में से एक दर्दनाक रोने की सी आवाज़ सुनाई दे रही है। उसे ऐसा भान होता था कि रात में आकाश पर केवल वही एक आवाज़ छाई हुई है और संसार के सब व्यक्ति उस आवाज़ से जाग कर बिस्तरों में बैठे उसे सुनने का प्रयत्न कर रहे हैं।...

पागल वृद्ध आवेश में आकर और अधिक मिट्टी डाले जाता था। वह चाहता था कि उस आवाज़ को दबा दे। किन्तु इस पर भी वह रह-रह कर उसके कान में आ रही थी—"बाबा जी ! हाय बाबा जी !"

उसने पूरी शक्ति से पृथ्वी पर पाँव मार कर चिल्लाते हुए कहा—"चुप रहो, लोग तुम्हारी आवाज़ सुन लेंगे।"

फिर भी उसे मालूम हुआ कि "हाय बाबा जी ! हाय बापू !" की आवाज़ें रह-रह कर सुनाई दे रही हैं।

इतने में सूर्य उदय हुआ और जगन्नाथ कुन्दू मन्दिर को छोड़ कर खेतों की ओर आ गया।

वहाँ भी किसी ने उसके पीछे से आवाज़ दी—"बापू !" घबराहट की दशा में जगन्नाथ ने पीछे फिर कर देखा तो उसका पुत्र वृन्दावन था।

वृन्दावन कहने लगा—"मुझे ज्ञात हुआ है कि मेरा बेटा आपके घर में छुपा हुआ है, उसे मुझे दे दो।"

यह सुनकर वृद्ध के नेत्र विस्तृत हो गये, मुंह चौड़ा हो गया, और उसने मुड़ कर पूछा—"क्या कहा ? तुम्हारा बेटा ?"

वृन्दावन ने उत्तर दिया—"हाँ मेरा बेटा गोकुल, अब उसका नाम नितई पाल है और मैंने अपना नाम दामोदर पाल प्रसिद्ध

कर रखा है। तुम्हारी मनहूसी और कंजूसी नीयत की बात चहुं ओर इतनी अधिक फैल चुकी थी कि विवश होकर मुझे अपना वास्तविक नाम बदलना पड़ा। वरना संभव था कि लोग हमारा नाम लेने से भी सकुचाते।"

वृद्ध ने बहुत धीरे से दोनों हाथ सिर के ऊपर उठाए। उसकी उंगलियाँ इस प्रकार काँपने लगीं, मानो वह वायु में किसी अदृष्ट वस्तु के पकड़ने का प्रयत्न कर रही हों। फिर वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तो अपने बेटे की बाँह पकड़ कर उसे घसीटता हुआ पुराने मन्दिर के समीप ले गया और पूछने लगा—"तुम्हें इस के अन्दर से किसी के रोने की आवाज़ सुनाई देती है ?"

वृन्दावन ने उत्तर दिया—"नहीं।"

वृद्ध ने कहा—"ध्यान से सुनो, कोई आवाज़ अन्दर से बाबा जी ! बाबा जी ! कहती सुनाई नहीं देती ?"

वृन्दावन ने फिर कान लगा कर उत्तर दिया—"नहीं।"

इस से वृद्ध जगन्नाथ की चिन्ता किसी सीमा तक दूर हो गई, साथ ही उसके मस्तिष्क ने भी उसे जवाब दे दिया।

उस दिन के पश्चात् उसकी दशा यह थी कि गाँव में आवारा फिरता और लोगों से पूछा करता—"तुम्हें किसी के रोने की आवाज़ तो नहीं सुनाई देती।"

लोग उसके पागलपन पर ठहाका लगाते।

इसके लग-भग चार वर्ष पश्चात् जगन्नाथ मृत्यु शय्या पर पड़ा था। संसार का प्रकाश धीरे धीरे उसके नेत्रों के सामने से दूर होता जा रहा था, और साँस अधिक कष्ट से आने लगा था। सहसा वह विक्षिप्त अवस्था में उठ कर बैठ गया। उसने अपने

दोनों हाथ ऊपर की ओर उठा लिये और वायु में इस प्रकार चलाने लगा जैसे किसी वस्तु को टटोल रहा हो और कहने लगा—"मेरी सीढ़ी किसने उठा ली !"

उस भयानक बन्दी गृह में से, जहाँ न देखने को प्रकाश और न साँस लेने के लिये वायु थी, बाहर निकलने के लिए सीढ़ी न पाकर वह फिर अपनी मृत्यु शय्या पर गिर पड़ा और जहाँ संसार की स्थायी आँख मिचोली के खेल में कोई छुपने वाला पाया नहीं गया उस श्रेणी में लोप हो गया।

खोया हुआ मोती

मेरी नौका ने स्नान घाट की टूटी-फूटी सीढ़ियों के समीप लंगर डाला। सूर्यास्त हो चुका था। नाविक नौका के तख़्ते पर ही मग़रिब (सूर्यास्त) की नमाज़ अदा करने लगा। प्रत्येक सिजदे के पश्चात् उसकी काली छाया सिन्दूरी आकाश के नीचे एक चमक के समान खिंच जाती।

नदी के किनारे एक प्राचीन भवन खड़ा था। जिसका छज्जा इस प्रकार झुका हुआ था कि उसके गिर पड़ने की हर घड़ी भारी शंका रहती थी। उसके द्वारों और खिड़कियों के किवाड़ बहुत टूटे और ढीले हो चुके थे। चहुँ ओर सून्यता छाई हुई थी। उस सून्य वातावरण में सहसा एक मनुष्य की आवाज़ मेरे कानों में सुनाई पड़ी और मैं काँप उठा।

"आप कहाँ से आ रहे हैं?"

मैंने गर्दन घुमा कर देखा तो एक पीले लम्बे और वृद्ध मनुष्य की शक्ल दिखाई पड़ी। जिसकी हड्डियाँ निकली हुई थीं, दुर्भाग्य के लक्षण सिर से पाँव तक प्रकट हो रहे थे। वह मुझ से दो चार सीढ़ियाँ ऊपर खड़ा था। सिल्क का मैला कोट और उसके नीचे एक मैली सी धोती बांधे हुए। उसका निर्बल शरीर, उतरा हुआ मुख और लड़खड़ाते हुए कदम बता रहे थे कि उस

क्षुधा पीड़ित मनुष्य को शुद्ध वायु से अधिक भोजन की आवश्यकता है।

"मैं राँची से आ रहा हूँ।"

यह सुन कर वह मेरे बराबर उसी सीढ़ी पर आ बैठा।

"और आपका काम ?"

"व्यापार करता हूँ।"

"काहे का ?"

"इमारती लकड़ी, रेशम और तिरफला का।"

"आपका नाम क्या है ?"

एक क्षण सोचने के बाद मैंने उसे अपना एक बनावटी नाम बता दिया। किन्तु वह अब मुझे एक टक देख रहा था।

"परन्तु आप का यहाँ आना कैसे हुआ ? केवल मनोरञ्जन या वायु परिवर्तन के लिये।"

मैंने कहा—"वायु परिवर्तन के लिये।"

यह भी खूब कही। मैं लगभग छः वर्ष से प्रतिदिन यहाँ की ताज़ा वायु पेट भर कर खा रहा हूँ और साथ ही १५ ग्रेन कुनीन भी। परन्तु अन्तर कुछ नहीं हुआ। कोई लाभ दिखाई नहीं देता।

"किन्तु राँची और यहाँ के जल वायु में तो पृथ्वी और आकाश का अन्तर है ?"

"इस में सन्देह नहीं, किन्तु आप यहां ठहरे किस स्थान पर हैं ? क्या इसी मकान में ?"

संभवतः उस व्यक्ति को सन्देह हो गया था कि मुझे उसके किसी गड़े हुए धन का कहीं से सुराग़ मिल गया है-और मैं उस

स्थान पर ठहरने के लिये नहीं, बल्कि उसके गड़े हुए धन पर अपना अधिकार जमाने आया हूँ। मकान की भलाई बुराई के सम्बन्ध में एक शब्द तक कहे बिना उसने अपने उस मकान के स्वामी की पन्द्रह साल पूर्व की एक कथा सुनानी आरम्भ कर दी।

उसकी गंजी खोपड़ी में गहरी और चमकदार काली आँखें मुझे कालरज के पुराने नाविक का स्मरण करा रही थीं। वह एक स्थानीय स्कूल में अध्यापक था।

नाविक ने नमाज़ से निबृत होकर रोटी बनानी आरम्भ कर दी। सूर्यास्त के समय आकाश के सिन्दूरी रंग पर अधिकार जमाने वाली अन्धेरी में वह खंडहर भवन एक अनोखा भयानक दृश्य प्रदर्शित कर रहा था।

मेरे पास सीढ़ी पर बैठे हुए उस दुबले और लम्बे स्कूल मास्टर ने कहा—"मेरे इस गाँव में आने से लग भग दस साल पूर्व एक व्यक्ति फनी भूषण सहाय इस मकान में रहता था। उसका चाचा दुर्गा मोहन बिना अपने किसी उत्तराधिकारी के मर गया। जिस की सम्पूर्ण सम्पत्ति और विस्तृत व्यापार का अकेला वही अधिकारी बना।

पाश्चात्य शिक्षा और नई सभ्यता का भूत फनी भूषण पर सवार था। कालेज में कई वर्षों तक शिक्षा प्राप्त कर चुका था। वह अंग्रेजों की भाँति कोठी में जूता पहने फिरा करता था, और साहब लोगों के साथ फर्राटे की अंग्रेजी बोलता था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये लोग उसके साथ कोई व्यापारिक रियायत देने के रवादार न थे। वे भलि भाँति जानते थे कि फनी भूषण [illegible]खिर को नये बगांल की वायु में सांस ले रहा है।

इस के अतिरिक्त एक और वला उसके सिर पर सवार थी। अर्थात उसकी पत्नी-परम सुन्दरी थी। यह सुन्दर वस्त्र और पाश्चात्य शिक्षा दोनों उसके पीछे ऐसे पड़ी थीं कि तोवा भली! खर्च सीमा से बाहर। तनिक शरीर गर्म हुआ और झट सरकारी डाक्टर खट-खट करते आ पहुंचे।

विवाह सम्भवतः आपका भी हो चुका है। आपको भी वास्तव में यह अनुभव हो गया होगा कि स्त्री कठोर स्वभाव वाले पति को सर्वदा पसन्द करती है। यह अभागा व्यक्ति जो अपनी पत्नी के प्रेम से वंचित हो, यह न समझ बैठे कि वह इस सम्पत्ति से माला माल नहीं या सौन्दर्य से वंचित है-नहीं-विश्वास कीजिये वह अपनी सीमा से अधिक कोमल प्रकृति और प्रेम के कारण इस दुर्भाग्य में फंसा हुआ है। मैंने इस विषय में खूब सोचा है और इस तथ्य पर पहुंचा हूं और यह है भी ठीक। पूछिये क्यों? लीजिये इस प्रश्न का संक्षिप्त और विस्तृत उत्तर इस प्रकार है।

यह तो आप अवश्य मानेंगे कि कोई भी व्यक्ति उस समय तक वास्तविक प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक कि उसे अपनी जन्म-जात विचार और स्वाभाविक योग्यताओं के प्रकट करने के लिए एक विस्तृत क्षेत्र प्राप्त न हो। हरिन को आपने देखा है वह अपने सींगों को वृक्ष से रगड़ कर आनन्द प्राप्त करता है, नर्म और नाजुक केले के खम्ब से नहीं। सृष्टि के आरम्भ से ही नारी जाति इस जंगली और कठोर स्वभाव पुरुष को जीतने के लिये विशेष ढंग सीखती चली आ रही है। यदि उसे पहले ही से आज्ञाकारी पति मिल जाए तो उसके वह आकर्षक हत्कंडे जो उस को मां और दादियों से वपोती रूप में मिले हैं, और लम्बे

समय से निरन्तर चलते रहने के कारण सीमा से अधिक सत्य भी सिद्ध हुए हैं, न केवल बेकार रह जाते हैं बल्कि स्त्री को भार स्वरुप मालूम होने लगते हैं।

स्त्री अपने आकर्षक सौंदर्य के बल पर पुरुष के प्रेम और उसकी आज्ञा कारिता प्राप्त करना चाहती है। किन्तु जो पति स्वयं ही उसके सौंदर्य के सामने झुक जाए, वह वास्तव में दुर्भाग्य शाली होता है, और उस से अधिक उसकी पत्नी।

वर्तमान सभ्यता ने ईश्वर प्रदत्त उपहार अर्थात "पुरुष की सुन्दर कठोरता" उससे छीन ली है। पुरुष ने अपनी निर्बलता से स्त्री के दाम्पत्य बन्धन को बड़ी सीमा तक ढीला कर दिया है। हमारी इस कहानी का अभागा फनी भूषण भी इस नवीन सभ्यता की छलना से छला हुआ था। और यही कारण था कि न वह अपने व्यापार में सफल था और न अपने गृहस्थिक जीवन से सन्तुष्ट। यदि एक ओर वह अपने व्यापार में लाभ से बेखबर था तो दूसरी ओर अपनी पत्नी के पतित्व अधिकार से वंचित।

फनी भूषण की पत्नी मनीमलिका को प्रेम और विलास सामग्री बे मांगे मिली थीं। उसे सुन्दर और बहू मूल्य साडियों के लिए अनुनय विनय तो क्या पति से कहने की भी आवश्यकता न होती थी। सोने के आभूषणों के लिये उसे झुकना न पड़ता था। इस लिए उसके स्त्रियोचित स्वभाव को आज्ञा देने वाले और अपराधी के ढंग से अपने में सेविका की प्रेममयी भावनाओं में आवेश की स्थिति उत्पन्न न कर पाती थी। उसके कान—"लो स्वीकार करो" के मधुर शब्दो से परिचित थे। किन्तु उसके ओठ "लाओ" और "दो" से सर्वथा अपरिचित। उसके सीधे स्वभाव

का पति इस मिथ्या भावना की कहावत में प्रसन्न था कि "कर्म किये जाओ फल की कामना मत करो, तुम्हारा परिश्रम कभी अकार्थ नहीं जाएगा।" वह इसी मिथ्या भावना के पीछे हाथ पैर मारे जा रहा था। परिणाम यह हुआ कि उसकी पत्नी उसे ऐसी मिशीन (यन्त्र) समझने लगी जो बिना चलाए चलती थी। स्वयं ही बिना कुछ कष्ट किये सुन्दर से सुन्दर साडियाँ और बहू मूल्य आभूषण बना कर उसके कदमों पर डालती रहती थी। उसके पुर्जे इतने शक्तिशाली और देर तक चलने वाले थे कि कभी भी उन को तेल देने की आवश्यकता न होती थी।

फ़नी भूषण की जन्म भूमि और रहने का स्थान समीप ही एक देहात का गाँव था किन्तु उसके चचा के व्यापार का मुख्य स्थान यही शहर था। इसी कारण उस की आयु का अधिक भाग यहीं व्यतीत हुआ था। वैसे माँ मर चुकी थी, किन्तु मौसी और मामियां आदि ईश्वर की कृपा से विद्यमान थीं। परन्तु वह विवाह के बाद ही फौरन मनी मलिका को अपने साथ ले आया था। उसने विवाह अपने सुख के लिये किया था न कि अपने सम्बन्धियों की सेवा के लिए।

पत्नी और अन्य अधिकारों में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। पत्नी का प्राप्त कर लेना और फिर उसकी देख-रेख करना, उसको अपना बनाने के लिए काफी नहीं हुआ करता।

मनी मलिका सोसाएटी की अधिक भक्त न थी। इस लिए व्यर्थ का खर्च भी न करती थी। बल्कि इसके प्रतिकूल बड़ी सावधानी रखने वाली थी। जो उपहार फनी भूषण उसको एक बार ला देता था फिर क्या मजाल कि उसको हवा भी लग जाए। वह सावधानी से सब रख दिया जाता था। कभी ऐसा नहीं

देखा गया कि किसी पड़ौसन को उसने भोजन पर बुलाया हो। वह उपहार या भेंट लेने देने के पक्ष में भी न थी।

सब से अधिक आश्चर्य की यह बात थी कि चौबीस साल की आयु में भी मनी-मलिका एक चौदह वर्ष की सुन्दर युवती मालूम होती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका रूप लावण्य केवल स्थायी ही नहीं, बल्कि चिरस्थायी रहने वाला है। मनी मलिका के पार्श्व में हृदय न था बर्फ का टुकड़ा था। जिस को प्रेम की तनिक भी तपत न पहुँची थी। फिर वह पिघलता क्यों ? और उसका यौवन ढलता किस प्रकार ?

जो वृक्ष पत्तों से लदा हुआ होता है प्रायः फल से वंचित रहता है। मनी मलिका का सौन्दर्य भी फल हीन था। वह बिना औलाद के थी। रख-रखाओ और व्यक्तिगत देख-रेख करती भी तो काहे की, उसका सारा ध्यान अपने आभूषणों पर ही केन्द्रित था। सन्तान होती तो वसंत की मीठी-मीठी धूप की भाँति उसके बर्फ से हृदय को पिघलाती और वह निर्मल जल उसके दाम्पत्य जीवन के मुरझाए हुए वृक्ष को हरा कर देता।

मनी मलिका गृहस्थ के काम काज और परिश्रम से भी न कतराती थी। जो काम वह स्वयं कर सकती थी उसका पारिश्रमिक देना उसे खलता था। दूसरों के कष्ट का न उसे ध्यान था और न नाते रिश्तेदारों की चिन्ता। उसको अपने काम से काम था। इस शान्त जीवन के कारण वह स्वस्थ और सुखी थी। न कभी चिन्ता होती थी न कोई कष्ट।

प्रायः पति इसे सन्तोष तो क्या सौभाग्य समझेंगे। क्योंकि जो पत्नी हर समय फ़रमाइशें लेकर पति की छाती पर चढ़ती रहे वह सारे गृहस्थ के लिए एक रोग सिद्ध होती है।

कम से कम मेरी तो यही सम्मति है कि सीमा से बढ़ा हुआ प्रेम पत्नी के लिये सम्भवतः गौरव की बात हो, किन्तु पति के लिये एक विपत्ति से कम नहीं। तनिक सोचिये तो कि क्या मनुष्य का यही काम रह गया है कि वह हर समय यह तोलता जोखता रहे कि उसकी पत्नी उसे कितना चाहती है। मेरा तो यह दृष्टिकोण है कि गृहस्थ का जीवन उस समय अच्छा व्यतीत होता है जब पति अपना काम करे और पत्नी अपना।

स्त्री का सौंदर्य और प्रेम यानी तिरया चरित्र पुरुष की बुद्धि से परे की चीज़ है। किन्तु स्त्री पुरुष के प्रेम के उतार-चढ़ाव और उसके न्यूनाधिक को बहुत गम्भीर दृष्टि से देखती रहती है। वह शब्दों से लहजे को और छुपी हुई बात से अर्थ को झट अलग कर लेती है। इसका कारण केवल यह है कि जीवन के व्यापार में स्त्री की पूंजी ले दे कर केवल पुरुष का प्रेम है। यही उसके जीवन का एकमात्र सहारा है। यदि वह पुरुष की रुचि की वायु के प्रवाह को अपनी जीवन नैया के वितान से स्पर्श करने में सफल हो जाए तो विश्वासतः उसकी नैया अभिप्रायः के तट तक पहुँच जाती है। इसी लिये प्रेम का कल्पना यन्त्र पुरुष के हृदय में नहीं, बल्कि स्त्री के हृदय में लगाया गया है।

प्रकृति ने पुरुष और स्त्री की रुचि में स्पष्ट रूप से अन्तर रखा है। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता इस स्त्री-पुरुष के अन्तर को मिटा देने पर तुली हुई है। स्त्री पुरुष बनी जा रही है और पुरुष स्त्री। स्त्री पुरुष के चरित्र तथा उसके कार्य-क्षेत्र को अपने जीवन की पूंजी और पुरुष स्त्रियोचित चरित्र तथा नारी कर्म-क्षेत्र को अपने जीवन का आनन्द समझने लगे हैं। इसलिए यह

कठिन हो गया है कि विवाह के समय कोई यह कह सके कि वधु स्त्री है या स्त्री नुमा पुरुष। इसी प्रकार स्त्री अनुमाण लगा सकती कि जिस के पल्ले वह बंध रही है वह पुरुष है या पुरुष नुमा स्त्री। इसलिए कि अन्तर केवल हृदय का है। पर क्या जाने कि पुरुष का हृदय मरदाना है या जनाना।

मैं बहुत देर से आप को शुष्क बातें सुना रहा हूँ। परन्तु किसी सीमा तक क्षमा योग्य भी हूँ। मैं अपनों से दूर निर्वासित का जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मेरी दशा उस तमाशा देखने वाले दर्शक के समान है जो दूर से गृहस्थ जीवन का तमाशा देख रहा हो, और वह उसके गुणों से लाभ उठाकर केवल उसके लिये कुछ सोच सकता हो। इसी लिये दाम्पत्य जीवन पर मेरे विचार अत्यन्त गम्भीर हैं। मैं अपने शिष्यों के सम्मुख तो यह विचार प्रकट कर नहीं सकता, इसी कारण से आपके सामने प्रकट करके अपने हृदय को हल्का कर रहा हूँ। आप अवकाश के समय इन पर विचार करें।

साराँश यह कि यद्यपि गृहस्थ जीवन में प्रकट रूप में कोई कष्ट फनी भूषण को न था। समय पर भोजन मिल जाता था, घर का प्रबन्ध सुचारू रूप से चल रहा था, किन्तु फिर भी एक प्रकार की विकलता और अविश्वास उसके हृदय में समाया हुआ था। और वह नहीं समझ सकता था कि वह है क्या? उसकी दशा उस बच्चे के समान थी जो रो रहा है और नहीं जानता कि उसके हृदय में कोई इच्छा है या नहीं।

अपनी जीवन संगिनी के हृदय के स्नेह रिक्त स्थान को वह सुनेहरी और मूल्यवान आभूषणों तथा इसी प्रकार के अन्य उपहारों से भर देना चाहता था।

उसका चचा दुर्गामोहन दूसरी तरह का व्यक्ति था। वह अपनी पत्नी के प्रेम को बहुमूल्य पर खरीदने के पक्ष में न था और न ही वह प्रेम के विषय में चिड़चिड़े स्वभाव का था। फिर भी अपनी जीवन संगिनी के प्रेम प्राप्ति के लिए भाग्यशाली था।

जिस प्रकार एक सफल दुकानदार को कहीं तक बे लिहाज़ होना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार एक सफल पति बनने के लिए पुरुष को कहीं तक कठोर स्वभाव बन जाना भी अति आवश्यक है। सानुरोध आप को मैं यह सीख देता हूँ।

ठीक उसी समय गीदड़ों की चीख पुकार जंगल से सुनाई दी। ऐसा ज्ञात होता था कि या तो वे उस स्कूल के अध्यापक के दाम्पत्य जीवन के मनोविज्ञान पर घृणित हंसी हंस रहे हैं या फनी भूषण की कहानी के प्रवाह को कुछ क्षणों के लिए उस चीख पुकार से रोक दिया है। फिर भी बहुत ही जल्दी वह चीख पुकार रुक गई और पहले से भी गहन अन्धेरी और सून्यता वायुमंडल पर छा गई। किन्तु स्कूल के अध्यापक ने पुनः कथा आरम्भ की।

सहसा फनी भूषण के बड़े तिजारती कारोबार में शिक्षा प्रद अवन्नति दृष्टिगोचर हुई। यह क्यों हुआ ? इस का उत्तर मेरी बुद्धि से परे है। संक्षिप्त में यह कि कुसमय ने उसके लिये बाज़ार में साख रखना कठिन कर दिया। यदि किसी प्रकार कुछ दिनों के लिए वह एक बहुत बड़ी पूंजी प्राप्त करके मंडियों में फैला सकता तो संभव था कि बाज़ार से माल को न खरीदने के तूफ़ान से बच निकलता। किन्तु इतनी बड़ी रकम का तुरन्त प्रबन्ध मौसी जी का घर न था। यदि स्थानीय साहूकारों से कर्ज़ माँगता तो अनेक प्रकार की अफ़वाहें फैल जातीं और उस की साख को

असहनीय हानि पहुँचती। यदि पत्र व्यवहार से भुगतान का ढंग करता तो रुक्का या परचे के विना संभव न था और इससे उसकी ख्याति को बहुत बड़ा आघात पहुँचने की सम्भावना थी। केवल एक युक्ति थी, कि पत्नी के आभूषणों पर रुपया प्राप्त किया जाए और यह विचार उसके हृदय में दृढ़ हो गया।

फनी भूषण मनी मलिका के पास गया। परन्तु वह ऐसा पति न था कि पत्नी से स्पष्ट और सबलता से कह सके। दुर्भाग्य वश उसे अपनी पत्नी से उतना घनिष्ट प्रेम था जैसा कि उपन्यास के किसी नायक को नायिका से हो सकता है।

सूर्य का आकर्षण पृथ्वी पर बहुत अधिक हैं, किन्तु अधिक प्रभावशाली नहीं। यही दशा फनी भूषण के प्रेम की थी। उस प्रेम का मनी मलिका के हृदय पर कोई प्रभाव न था। किन्तु मरता क्या न करता आर्थिक कठिनाई की चर्चा प्रोनोट, कर्ज़ का कागज़, बाज़ार के उतार चढ़ाव की दशा, इन सब बातों को कम्पित और अस्वाभाविक स्वर में फनी भूषन ने अपनी पत्नी को बताया। झूठे मान, असत्य विचार और भाग्रावेश में साधारण सी समस्या जटिल बन गई। अस्पष्ट शब्दों में विषय की गम्भीरता बता कर डरते-डरते अभागे फनी भूषण ने कहा—"तुम्हारे आभूषण।"

मनी मलिका ने न हाँ कही और न ना, और उसके मुख से भी कुछ ज्ञात न होता था। उस पर गहरा मौन छाया हुआ था। फनी भूषण के हृदय को गहरा आघात पहुँचा। किन्तु उसने प्रकट न होने दिया। उसमें पुरुषों का सा वह साहस न था कि प्रत्येक वस्तु का वह प्रतिदिन निरीक्षण करता। उसका

इन्कार पर उसने किसी प्रकार की चिन्ता प्रदर्शित न की। वह ऐसे विचारों का व्यक्ति था कि प्रेम के संसार में शक्ति और जबर्दस्ती से काम नहीं चल सकता। पत्नी की स्वीकृति के बिना वह आभूषणों को छूना भी पाप समझता था। इस लिये निराश होकर रुपये की प्राप्ति के लिये कुछ युक्तियाँ सोच कर कलकत्ते चला गया।

: २ :

पत्नी अपने पति को प्रायः जानती है, उसकी नस-नस से परिचित होती है। पति अपनी पत्नी के चारित्र्य का इतना गम्भीर अध्ययन नहीं कर सकता। यदि पति कुछ गम्भीर व्यक्ति हो तो पत्नी के चरित्र के कुछ भाग उसकी तीक्षण दृष्टि से बचा कर जान लेता है। सम्भवतः यह सत्य है कि मनी मलिका ने फनी भूषण को अच्छी तरह नहीं समझा। एक पाश्चात्य व्यक्ति का व्यक्तित्व मूर्ख स्त्री के अन्ध विश्वासी जीवन और उसकी समझ बूझ से प्रायः ऊंचा होता है। वह स्वयं स्त्री की भाँति एक रोमाँचकारी व्यक्तित्व बन कर रह जाता है, और इसी कारण पुरुष की उन तीन दशाओं में से किसी में भी फनी भूषण को पूरी तरह सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

मूर्ख-अन्धा-जंगली:—

मनी मलिका ने अपने बड़े सलाहकार मधुसूदन को बुलाया। यह दूर के रिश्ते से उसका चचेरा भाई था और फनी भूषण के व्यापार में एक असामी की देख-देख पर नियुक्त था। योग्यता के कारण नहीं, बल्कि रिश्तेदारी के ज़ोर पर वह उस असामी पर कब्ज़ा किये हुए था। काम की चतुराई के कारण नहीं, बल्कि

रिश्तेदारी की धोंस में, वेतन से भी अधिक रकम ले उड़ता था। मनो मलिका ने सारी राम कहानी उसके सामने वर्णन की और अन्त में पूछा—"क्या करूँ, नेक सलाह दो।"

मधु ने बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता के ढंग से सिर हिला कर कहा—"मेरा माथा ठिनकता है, इस मामले में कुशलता दिखाई नहीं देती।"

सांसारिक बुद्धिहीन व्यक्तियों को हर कार्य में सन्देह ही दिखाई दिया करता है। उनको किसी काम में कुशलता नहीं दिखाई देती।

"फनी भूषण को रुपया तो मिलने से रहा, अन्त में तुम्हें आभूषणों से ही हाथ धोने पड़ेंगे।"

सांसारिक समस्याओं और पुरुष तथा स्त्री के सम्बन्ध में जो मनी मलिका के अपने व्यक्तिगत विचार थे उन के प्रकाश में मधु के निकाले हुए परिणाम का प्रथम भाग सम्भावना और दूसरा सत्य मालूम होता था। विश्वास उसके हृदय से जाता रहा था, सन्तान उसके थी ही नहीं। बाकी रहा पति, वह किसी गिनती में ही न था। अतः उसका सम्पूर्ण ध्यान अपने आभूषणों पर केन्द्रित था। इन्हीं से उसके हृदय की प्रसन्नता थी, येही उसको सन्तान के समान प्रिय थे। सन्तान को माँ से छीन लीजिये फिर देखिये मामता की क्या दशा होती है। यही दशा मनी मलिका की थी। उसका यह विचार था कि उसके आभूषण पति के खयाली मनसूबों की भेंट हो जाएगें।

"फिर मुझे क्या करना चाहिये?"

"अभी मैके चली जाओ और सारे आभूषण वहां छोड़ आओ।" चालाक़ मधु ने कहा।

इस प्रकार उसकी हाँडी को भी बघार लगता है। यदि सारे नहीं तो कोई न कोई आभूषण मधुको अपने हत्थे चढ़ने की भी आशा थी। मनी मलिका उसी समय सहमत हो गई।

बढ़ते हुए अन्धकार से स्कूल के अध्यापक पर भी गम्भीरता छा गई थी, किन्तु कुछ क्षणों के पश्चात उसने फिर वर्णन आरम्भ किया।

: ३ :

झुटपुटे के समय जब कि सावन की घटाएं आकाश पर ड़ेरा जमाए हुए थीं, वर्षा मूसलाधार हो रही थी, एक नौका ने रेतीली सीढ़ियों पर लंगर डाला। दूसरे दिन प्रातः घटा टोप अन्धेरे में मनी मलिका आई और एक मोटी चादर में सिर से पाँव तक लिपटी हुई नौका पर सवार हो गई!

मधु जो रात से उसी नौका में सोया हुआ था, उस की आहट से जाग गया।

"आभूषणों का सन्दूकचा मुझे दे दो, ताकि सुरक्षित रख लूं।"

"अभी ठहरो जल्दी क्या है ? चलो तो सही, आगे देखा जाएगा।"

नौका का लंगर उठा और वह फुंकारती हुई नदी की लहरों से झपटने लगी। मनी मलिका ने सारे आभूषण एक-एक करके पहन लिये थे। सन्दूक में बन्द करके ले जाना असुरक्षित मालूम होता था। मधु हक्का बक्का रह गया, जब उसने देखा कि मनी के पास सन्दूकचा नहीं है। उस को इस की कल्पना भी न थी कि उसने आभूषणों को अपने प्राणों से लगा रखा है।

चाहे मनी मलिका ने फनी भूषण को न समझा था किन्तु माधो के चरित्र का बहुत ही ठीक अन्दाज़ा लगाया था।

जाने से पहले माधो ने फनी भूषन के एक विश्वासी मुनीम को लिख भेजा था कि मैं मनी मलिका के साथ उसको मैके पहुँचाने जा रहा हूं। यह मुनीम दुनिया का अनुभवी और बड़ी आयु का था और फनी भूषण के पिता के समय से ही उसके साथ था। उसको मनी मलिका के जाने से बहुत चिन्ता और सन्देह हुआ। उसने अपने मालिक को फौरन लिखा। वफादारी और खैर ख्वाही ने उसे प्रेरणा दी और उसने अपने पत्र में अपने मालिक को खूब खरी-खरी सुनाई। पति की लाज और दूरदर्शिता दोनों का यह अर्थ नहीं है कि पत्नी को इस प्रकार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। मनी मलिका के हृदय के सन्देह को फनी भूषण समझ गया। उसे अत्यन्त दुःख हुआ। वह इस सम्बन्ध में एक शब्द भी शिकायत का जबान पर न लाया था। अपमान और कष्ट सहे, किन्तु उसने मनी मलिका पर कोई दबाओ डालना उचित न समझा। किन्तु फिर भी इतना अविश्वास। वर्षों से वह मेरी ऐकान्त की और सांसारिक साथी रही है। आश्चर्य है कि उसने मुझे तनिक भी न समझा।

इस मौके पर कोई और होता तो क्रोधावेश में न जाने क्या कर बैठता, किन्तु फनी भूषण मौन था और अपना दुःख प्रकट करके मनी मलिका को दुखित करना उचित न समझता था।

पुरुष को चाहिये कि वह दावानल की भाँति जरा-जरा सी बात पर भड़क जाए। जिस प्रकार स्त्री सावन के बादलों की भाँति बात-बात पर आंसू की झड़ी लगा देती है। किन्तु अब वह पहले से दिन कहाँ?

फनी भूषण ने मनी मलिका को उसकी अनुपस्थिति में बिना सूचना दिये जाने के विषय में कोई डाँट फटकार का पत्र न लिखा। बल्कि यह निश्चय कर लिया कि मरते दम तक उस के आभूषणों का नाम तक जबान पर न लाऊँगा। रुपये की वसूली में फनी भूषण सफल हो गया। उसके व्यापारिक रास्ते खुल गये। दस दिन के पश्चात वह अपने घर को वापस चला, इस विचार को लिये हुए कि आभूषण मैके में छोड़ कर मनी मलिका घर को वापस आगई होगी।

दस दिन पहले का तुच्छ और असफल प्रश्न कर्ता जब मस्तानी चाल से घर में कदम रखेगा और पत्नी की दृष्टि उस की सफलता से दमकते हुए मुख पर पड़ेगी, तो वह अपने इन्कार पर स्वयं लज्जित होगी और अपनी नादानी पर पश्चाताप प्रकट करेगी। इन विचारों में मगन फनी भूषण शयन कक्ष में पहुँचा। परन्तु द्वार पर ताला लगा हुआ था। ताला तुड़वा कर अन्दर घुसा तो तिजूरी के किवाड़ खुले पड़े थे।

इस आघात से वह लड़खड़ा गया—"शुभचिन्त और प्रेम" उस समय उसके पास निरर्थक और अस्पष्ट शब्द थे। सोने का पिंजरा, जिस की प्रत्येक सुनेहरी तिली को उसने अपने प्राण और आन का मूल्य देकर प्राप्त किया था, टूट चुका था और खाली पड़ा था। वह अब दिवालिया था और सिवाय गहरी उसांस, आंसू और हृदय की टीस के उस के पास कुछ न था।

मनी मलिका को बुलाने का ध्यान भी उस के हृदय में न आया। उसने यह निश्चय कर लिया कि वह जब चाहे आए-आए या न आए-किन्तु वृद्ध मुनीम इस निश्चय के विरुद्ध था। वह अनु

रोध कर रहा था कि कम से कम उसकी कुशल क्षेम अवश्य मंगानी चाहिये। इतनी देरी का कोई कारण समझ में नहीं आता। उसके अनुरोध से विवश होकर मनी मलिका के मैके को आदमी भेजा गया। किन्तु वह यह अशुभ समाचार लाया कि न यहाँ मनी मलिका आई है न माधो।

यह सुना तो पाँव तले की ज़मीन निकल गई। नदी पार आदमी दौड़ाये गये। खोज और प्रयत्न में किसी प्रकार की कमी न रखी। किन्तु पता न चलना था, न चला। यह भी मालूम न हो सका कि नौका किस दिशा में गई है और नौका का नाविक कौन था।

निराश फनीभूषन हृदय मसोस कर बैठ गया।

: ४ :

कृष्ण जन्माष्टिमी की शाम थी। वर्षा हो रही थी। फनी भूषण शयन कक्ष में अकेला था। गाँव में एक व्यक्ति भी बाकी न था। जन्माष्टिमी के मेले ने गाँव का गाँव सूना कर दिया था। मेले की चहल पहल और महाभारत के नाटक के शौक ने बच्चे से लेकर बूढ़े तक को खेंच लिया था। शयनकक्ष की खिड़की का एक किवाड़ बन्द था। फनी भूषण दीन दुनिया से बे खबर बैठा था।

सन्ध्या का झुटपुटा रात्रि के गहन अन्धेरे में परिवर्तित हो गया। किन्तु इस भयावने अन्धेरे, मूसलाधार वर्षा और ठंडी वायु का उसको ध्यान भी न था। दूर से गाने की मधुर ध्वनि से उसकी श्रवण शक्ति सर्वथा बेसुध थी।

दीवार पर सरस्वती और लक्ष्मी के चित्र लगे हुए थे। फ़र्श साफ़ था और प्रत्येक वस्तु योग्य स्थान पर रखी हुई थी।

पलंग के समीप एक खूंटी पर एक सुन्दर और आकर्षक साड़ी लटकी हुई थी। सिरहाने एक छोटी सी मेज़ पर पान का बीड़ा स्वयं मनी मलिका के हाथ का बना हुआ रखा सूख चुका था।

विभिन्न वस्तुएं सलीके से अपने-अपने स्थान पर रखी हुई थीं। एक ताक़ में मनी मलिका का प्रिय लैम्प रखा हुआ था। जिसको वह अपने हाथ से प्रकाशित किया करती थी और जो उसकी अन्तिम विदाई का स्मरण करा रहा था। मनी की स्मृति में इन सम्पूर्ण वस्तुओं का विशेष रुदन उस कमरे को एक कामना का मातम स्थल बनाए हुए था। फनी भूषण का हृदय स्वतः कह रहा था—"प्यारी मनी आओ और अपने प्राणमय सौंदर्य से इन सब में प्राण फूँक दो!"

कहीं आधी रात के लगभग जाकर बूंदों की तड़तड़ थमी। किन्तु फनी भूषण उसी विचार में तल्लीन बैठा था।

अन्धेरी रात के असीमित धुन्धले वायुमंडल पर मृत्यु की राजधानी का सिक्का चल रहा था। फनी भूषण की दुखित आत्मा का रुग्न स्वर इतना पीड़ामय था कि यदि मृत्यु की नींद सोने वाली मनी मलिका भी सुन पाए तो एक बार नेत्र खोल दे और अपने सोने के आभूषण पहने हुए उस अन्धेरे में ऐसी प्रकट हो जैसे कसौटी के कठोर पत्थर पर किंचित सुनेहरी रेखा।

: ५ :

सहसा फनीभूषण के कान में किसी के पाँवों की सी आहट सुनाई दी। ऐसा मालूम होता था कि नदी तट से वह उस घर

की ओर वापस आ रही है। नदी की काली लहरें रात की अन्धेरी में मालूम न होती थीं। आशा की प्रसन्नता ने उसे जीवित कर दिया। उसके नेत्र चमक उठे। उसने अन्धकार के पर्दे को फाड़ना चाहा, किन्तु व्यर्थ। जितना अधिक वह नेत्र फाड़ कर देखता था, अन्धकार के पर्दे और अधिक गहन होते जाते थे। और यह मालूम होता था कि प्रकृति इस भयावनी अन्धेरी में मनुष्य के हस्ताक्षेप के विरुद्ध विद्रोह कर रही है। आवाज़ समीप से समीप होती गई। यहाँ तक कि सीढ़ियों पर चढ़ी और सामने द्वार पर आ कर रुक गई, जो ताला लगा हुआ था। द्वारपाल भी मेले में गया हुआ था। द्वार पर धीमी सी खुट-खुट सुनाई दी। ऐसी जैसे आभूषणों से सुसज्जित स्त्री का हाथ द्वार खटखटा रहा हो। फनी भूषण सहन न कर सका। ज़ीने से उतर कर बरामदे से होता हुआ द्वार पर पहुँचा। ताला बाहर से लगा हुआ था। सम्पूर्ण शक्ति से उसने द्वार हिलाया। शोर गुल से उसका सपना टूटा तो वहाँ कुछ न था।

वह पसीने में सराबोर था, हाथ पाँव ठंडे पड़े हुए थे। उस का हृदय टिमटिमाते हुए दीपक के अन्तिम प्रकाश की भाँति जल कर बुझने को तैयार था।

वर्षा की तड़तड़ ध्वनि के सिवाय कुछ भी सुनाई न देता था।

फनी भूषण से यह "वास्तविकता" किंचित मात्र भी विस्मृत न हुई थी कि उसकी अधूरी इच्छाएं पूरी होते-होते रह गईं।

: ६ :

दूसरी रात को फिर नाटक होने वाला था। नौकर ने आज्ञा चाही तो चेतावनी दे दी कि बाहर का द्वार खुला रहे।

"यह कैसे हो सकता है। विभिन्न स्वभाव के व्यक्ति बाहर से मेले में आए हुए हैं, दुर्घटना का सन्देह है।" नौकर ने कहा।

"नहीं, तुम द्वार जरूर खुला रखो।"

"तो फिर मैं मेले नहीं जाऊँगा।"

"नहीं तुम अवश्य जाओ।"

नौकर आश्चर्य में था कि आखिर उनका आशय क्या है?

जब सन्ध्या हो गई और चहुँ ओर अन्धकार छा गया तो फनी भूषण फिर उस खिड़की में आ बैठा। आकाश पर गहरा कोहरा छाया हुआ था, घनघोर घटाएं ऐसी तुली खड़ी थीं कि जलथल एक कर दें, चहुँ ओर सून्यता का राज्य था। ऐसा मालूम होता था कि सारे संसार का वायुमंडल मौन भाव से किसी मधुर ध्वनि को सुनने के लिए अपने कान लगाए हुए है। मेंडकों की निरन्तर टर्र-टर्र और ग्रामीण स्वाँगों की कम्पित ध्वनि भी उस सून्यता में बाधक न मालूम होती थी।

आधी रात के लगभग फिर सम्पूर्ण शोर, चहल पहल सन्ध्या के मौन में सोने लगी। रात ने अपने काले वस्त्रों पर एक और काला लबादा पहन लिया। पहली रात की भाँति फनी भूषण को फिर वही आवाज़ सुनाई दी। उसने नदी की ओर दृष्टि उठा कर भी न देखा। ईश्वर न करे कि कोई अनाधिकार चेष्टा द्वारा समय से पूर्व ही उसकी आकांक्षाओं का खून करदे। वह मूर्तिवत

बैठा रहा। जैसे किसी ने लकड़ी की प्रतिमा को बना कर सरेश से कुर्सी पर चिपका दिया हो।

कदमों की वही आहट सुनसान घाट की सीढ़ियों की ओर से आकर मुख्य द्वार में प्रविष्ट हुई। चक्कर वाले ज़ीने की सीढ़ियों पर चढ कर अन्दर के कमरे की ओर बढ़ी। लहरों की प्रतिस्पर्धा में आपने नौका को देखा होगा। इसी प्रकार फनी भूषण का हृदय बल्लियों उछलने लगा। वह आवाज़ बरामदे से होती हुई शयनकक्ष की ओर आई और ठीक द्वार पर आकर ठहर गई। अब केवल द्वार प्रवेश करना शेष था।

फनी भूषण की आकांक्षाएं मचल उठीं, सन्तोष का आंचल हाथ से सर्वथा जाता रहा, वह सहसा कुर्सी से उछल पड़ा। एक दुखभरी चीख—"मनी" उसके मुख से निकली। किन्तु दुःख है कि उसके पश्चात् मेंडकों की आवाज़ और वर्षा की बड़ी बड़ी बूंदों की तड़ तड़ के सिवाय और कुछ न था।

: ७ :

दूसरे दिन मेला छंटने लगा, दुकानें उठनी आरम्भ हो गईं, दर्शक अपने-अपने घरों को वापस आने लगे। मेले की शोभा समाप्त हो गई।

फनी भूषण ने दिन में व्रत रखा और सब नौकरों को आज्ञा दे दी कि आज रात को घर में कोई भी व्यक्ति न रहे। नौकरों का विचार था कि हमारे मालिक आज किसी विशेष मन्त्र का जाप करेंगे।

सन्ध्या समय कहीं भी आकाश की टुकड़ियों पर बादल न थे। वर्षा से धुले हुए वायुमंडल में सितारे चमकने लगे थे, पूर्णिमा

का चाँद निकला हुआ था, वायु भी मन्द-मन्द बह रही थी, मेले से लौटे हुए दर्शक अपनी थकान उतार रहे थे और बेसुध हुए सो रहे थे। नदी पर कोई नौका दिखाई न देती थी।

फनी भूषण उस खिड़की में आ बैठा और तकिये से सिर लगा कर आकाश की ओर ध्यान से देखने लगा। उसको उस समय वह समय याद आया जब वह कालेज में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। सन्ध्या समय चौंक में लेट कर अपनी भुजा पर सिर रख कर झिलमिलाते हुए सितारों को देख कर, मनी मलिका की सुन्दर कल्पना में खो जाया करता था। उन दिनों कुछ समय का विछोह मिलन की आशाओं को अपने आँचल में लिये बहुत ही प्रिय मालूम हुआ करता था। परन्तु वह सब कुछ अब "स्वप्न" मालूम होता था।

सितारे आकाश से ओझल होने लगे, अन्धकार ने दांए बांयें और नीचे ऊपर सब ओर से पर्दे डालने आरम्भ कर दिये, और यह पर्दे आँख की पल्कों की भाँति परस्पर मिल गये। संसार स्वप्नमय हो गया।

किन्तु आज फनी भूषण पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव सा था। वह अनुभव कर रहा था कि उसकी आशाओं के पूर्ण होने का समय समीप है।

पिछली रातों की भाँति किसी के पाँवों की आहट फिर स्नान घाट की सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। फनी भूषण ने आँखें बन्द कर लीं और विचारों में निमग्न हो गया। पाँव की आहट उन्मुक्त द्वार से प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण मकान में होती हुई शयनकक्ष के द्वार पर आकर विलीन हो गई। फनी भूषण का सम्पूर्ण शरीर काँपने लगा। परन्तु वह दृढ़ निश्चय कर चुका था कि अन्त तक

आँखें न खोलूंगा। आहट कमरे में प्रविष्ट हुई, खूंटी पर की साड़ी, ताक के लैम्प, खुले हुए पानदान और अन्य वस्तुओं के पास थोड़ी-थोड़ी देर ठहरी और अन्त में फनी भूषण की कुर्सी की ओर बढ़ी।

अब फनी भूषण ने आँखें खोल दीं। धीमी-धीमी चाँदनी खिड़की से आ रही थी। उसकी दृष्टि के सामने एक ढाँचा, एक हड्डियों का पिंजर खड़ा था। उसके रोम-रोम में छल था, कलाईयों में कड़े, गले में माला। साराँश यह कि प्रत्येक जोड़ जड़ाऊ आभूषणों से दमक रहा था। सम्पूर्ण आभूषण ढीले होने के कारण निकले पड़ते थे। नेत्र वैसे ही बड़े-बड़े और चमकीले, परन्तु प्रेम भावना से रिक्त थे। अठारह वर्ष पूर्व विवाह की रात को शहनाइयों के मधुर स्वरों में इन्हीं मोहिनी आँखों से सनी मलिका ने फनी भूषण को पहली बार देखा था। आज वही आँखें वर्षा की भीगी चाँदनी में उसके मुख पर जमी हुई थीं।

पिंजर ने दाँए हाथ से संकेत किया। फनी भूषण स्वयं चल पड़ने वाली कल की भाँति उठा और पिंजर के पीछे-पीछे हो लिया। हर कदम पर उसकी हड्डियाँ चटख रही थीं, आभूषण झंकृत हो रहे थे। वह बरामदे से होते हुए, सीढ़ियों से नीचे उतरे और उसी पथ पर हो लिये जो स्नान घाट को जाता था। अन्धेरे में जुगनू कभी-कभी चमक उठते थे। मद्धम चाँदनी वृक्षों के गहन पत्तों में से निकलने के लिए प्रयत्न शील थी।

ये दोनों नदी के तट पर पहुँचे। पिंजर ने सीढ़ियों से नीचे उतरना आरम्भ किया। जल पर चाँदनी का प्रतिबिम्ब नदी की लहरों से क्रीड़ा कर रहा था। पिंजर नदी में कूद पड़ा, उसके पीछे फनी भूषण का पाँव भी नदी में गया। उसकी स्वप्न की

छलना टूटी तो वहाँ कोई न था, केवल वृक्षों की एक पंक्ति चौकीदारी कर रही थी।

अब फनी भूषण के सम्पूर्ण शरीर पर कम्पन छाया हुआ था। फनी भूषण भी एक अच्छा तैराक था, किन्तु अब उसके हाथ पाँव बस में न थे। दूसरे ही क्षण वह नदी के अथाह जल की तह में जा चुका था।

इस दर्द से भरे हुए अन्त पर स्कूल के अध्यापक ने कथा को समाप्त किया। उसकी समाप्ति पर हमें फिर एक बार सून्य वायुमंडल का अनुभव हुआ। मैं भी मौन था। अन्धेरे में मेरे मुख से मेरे विचारों का अध्ययन वह न कर सकता था।

"क्या आप इस को कहानी कहते हैं ?" उसने सन्देह की मुद्रा में पूछा।

"नहीं मैं तो इसे सत्य नहीं समझता, प्रथम तो इस का कारण यह है कि मेरी प्रकृति उपन्यास और कहानी लेखन से ऊँची है, और दूसरा कारण यह है कि मैं ही फनी भूषण हूँ।" मैंने बात को काट कर कहा।

स्कूल का अध्यापक कुछ अधिक व्याकुल न था।

"किन्तु आपकी पत्नी का नाम" उस ने पूछा।

"नरवदा काली"

—:*:—

हड्डियों का पिंजर

जब मैं पढ़ाई की पुस्तकें समाप्त कर चुका तो मेरे पिता ने मुझे वैद्यक सिखानी चाही, और इस काम के लिए एक संसार के अनुभवी गुरु को नियुक्त कर दिया। मेरा नवीन गुरु केवल देशी वैद्यक में ही चतुर न था, बल्कि डाक्टरी भी जानता था। उसने मनुष्य के शरीर की बनावट समझाने के आशय से मेरे लिये एक मनुष्य का ढाँचा अर्थात हड्डियों का पिंजर मंगा दिया था। जो उस कमरे में रखा गया, जहां मैं पढ़ता था। साधारण व्यक्ति जानते हैं कि मुर्दा विशेषतः हड्डियों के ढाँचे से, कम आयु वाले बच्चों को, जब वे अकेले हों, कितना अधिक भय लगता है। स्वभावतः मुझको भी डर लगता था और आरम्भ में मैं कभी उस कमरे में अकेला न जाता था। यदि कभी किसी आवश्यकतावश जाना भी पड़ता तो उस की ओर आँख उठा कर न देखता था। एक और विद्यार्थी भी पठन में मेरा साथी था। जो बहुत निभर्य था। वह कभी भी उस ढाँचे से भयभीत न होता था और कहा करता था कि इस मृत हड्डियों के ढाँचे की सामर्थ्य ही क्या है? जिस से किसी जीवित व्यक्ति को हानि पहुंच सके। अभी हड्डियां हैं, कुछ दिनों पश्चात मिट्टी हो जायें गीं। किन्तु मैं इस विषय में उस से कभी सहमत न हुआ

और सर्वदा यही कहता रहा कि यह मैं ने माना कि आत्मा इन हड्डियों से विलग हो गई है, तब भी जब तक यह विद्यमान है वह समय असमय पर आकर अपने पुराने मकान को देख जाया करती है। मेरा यह विचार प्रकट में अनोखा या असम्भव प्रतीत होता था और कभी किसी ने यह नहीं देखा होगा कि आत्मा फिर अपनी हड्डियों में वापस आई हो। किन्तु यह एक अमर घटना है कि मेरा विचार सत्य था और सत्य निकला।

: २ :

कुछ दिनों पहले की घटना है कि एक रात को गृहस्थिक आवश्यकताओं के कारण मुझे उस कमरे में सोना पड़ा। मेरे लिये यह नई बात थी। अतः नींद न आई और मैं काफ़ी समय तक करवटें बदलता रहा। यहाँ तक कि समीप के गिरजाघर ने बारह बजाये। जो लैम्प मेरे कमरे में प्रकाशित था, वह मद्धम होना आरम्भ हुआ और फिर धीरे धीरे बुझ गया। उस समय मुझे उस प्रकाश के सम्बन्ध में विचार आया, कि एक क्षण भर पहले वह विद्यमान था किन्तु अब सर्वदा के लिये अन्धेरे में परिवर्तित हो गया। संसार में मनुष्य जीवन की भी यही दशा है। जो कभी दिन और कभी रात को अनन्त जीवन में जा मिलता है।

धीरे धीरे मेरे विचार हड्डियों के ढाँचे की ओर परिवर्तित होने आरम्भ हुए। मैं हृदय में सोच रहा था कि भगवान जाने ये हड्डियां अपने जीवन में क्या कुछ न होंगी। सहसा मुझे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे कोई अनोखी वस्तु मेरे पलंग के चहुंओर

अन्धेरे में फिर ही है। फिर लम्बी सांसों की ध्वनि, जैसे कोई दुखित व्यक्ति साँस लेता है, मेरे कानों में आई और पाँवों की आहट भी सुनाई दी। मैं ने सोचा कि यह मेरा भ्रम है और बुरे स्वप्नों के कारण काल्पनिक आवाज़ें आ रही हैं। किन्तु पांव की आहट फिर सुनाई दी! इस पर मैंने भ्रम निवारण के हेतू ऊंचे स्वर से पूछा—"कौन है ?" यह सुनकर वह अपरिचित शक्ल मेरे समीप आई और बोली—"मैं हूँ, मैं अपनी हड्डियों को देखने आई हूं।"

मैंने विचार किया मेरा कोई परिचित मुझसे हंसी कर रहा है। इसलिये मैंने कहा—"यह कौन सा समय हड्डियों के देखने का है। वास्तव में तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?"

ध्वनि आई—"मुझे असमय से क्या अभिप्राय ? मेरी वस्तु है, मैं जिस समय चाहूं इसे देख सकती हूं। आह ! क्या तुम नहीं देखते वे मेरी पसलियाँ हैं, जिन में वर्षों मेरा हृदय रहा है। मैं पूरे २६ वर्ष इस घोंसले में बन्द रही, जिस को अब तुम हड्डियों का ढाँचा कहते हो। यदि मैं अपने पुराने घर को देखने चली आई तो इस में तुम्हें क्या बाधा हुई ?"

मैं डर गया और आत्मा को टालने के लिये कहा। अच्छा तुम जाकर अपनी हड्डियां देख लो मुझे नींद आती है। मैं सोता हूं। मैंने हृदय में निश्चय कर लिया कि जिस समय वह यहां से हटे, मैं तुरन्त भाग कर बाहर चला जाऊंगा। किन्तु वह टलने वाली असामी न थी। कहने लगी—"क्या तुम यहां अकेले सोते हो ? अच्छा आओ कुछ बातें करें।"

उस का आग्रह मेरे लिये व्यर्थ की विपत्ति से कम न था। मृत्यु की रूप रेखा मेरी आँखों के सामने फिरने लगी। किन्तु

विवशता से उत्तर दिया—"अच्छा तो बैठ जाओ और कोई मनो-रंजक बात सुनाओ।"

आवाज़ आई—"लो सुनो। २५ वर्ष बीते मैं भी तुम्हारी तरह ममुष्य थी, और मनुष्यों में ही बैठ कर बात चीत किया करती थी। किन्तु अब शमसान के सून्य स्थान में फिरती रहती हूं। आज मेरी इच्छा है कि मैं फिर एक लम्बे समय के पश्चात मनुष्यों से बातें करूँ। मैं प्रसन्न हूँ कि तुमने मेरी बातें सुनने पर सहमती प्रकट की है। क्यों ? तुम बातें सुनना चाहते हो या नहीं ?"

यह कह कर वह आगे की ओर आई और मुझे मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति मेरे पाँयती पर बैठ गया है। फिर इस से पूर्व कि मैं कोई शब्द मुख से निकालूं, उसने अपनी कथा सुनानी आरम्भ कर दी।

: ३ :

वह बोली—"महाशय जब मैं मनुष्य के रूप में थी तो केवल एक व्यक्ति से डरती थी, और वह व्यक्ति मेरे लिए मानो मृत्यु का देवता था। वह था मेरा पति। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मछली को काँटा लगा कर पानी से बाहर ले आया हो। वह व्यक्ति मुझ को मेरे माता-पिता के घर से ले आया था और मुझ को वहाँ जाने न देता था। अच्छा है उसका काम जल्दी ही समाप्त हो गया अर्थात् विवाह के दूसरे महीने ही वह संसार से चल बसा। मैंने लोगों की देखा देखी वैष्णव रीति से क्रिया कर्म किया। किन्तु हृदय में बहुत प्रसन्न थी कि काँटा निकल गया। अब मुझ को अपने माता-पिता से मिलने की आज्ञा मिल जाएगी और मैं

अपनी पुरानी सहेलियों से, जिन के साथ खेला करती थी, मिलूंगी। किन्तु अभी मुझ को मैके जाने की आज्ञा न मिली थी, कि मेरा ससुर घर में आया और मेरा मुख ध्यान से देख कर अपने आप से कहने लगा—"मुझ को इस के हाथ और पाँव के चिन्ह देखने से मालूम होता है यह लड़की डायन है।" अपने ससुर के ये शब्द मुझ को अब तक याद हैं। वे मेरे कानों में गूँज रहे हैं। इस के कुछ दिनों पश्चात् मुझे अपने पिता के यहाँ जाने की आज्ञा मिल गई। पिता के घर जाने पर मुझे जो खुशी प्राप्त हुई वह वर्णन नहीं की जा सकती। मैं वहाँ प्रसन्नता से रहने और अपने यौवन के दिन व्यतीत करने लगी। मैंने उन दिनों अनेकों बार अपने विषय में लोगों को कहते सुना कि मैं सुन्दर युवती हूँ। परन्तु तुम कहो तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

मैंने उत्तर दिया—"मैंने तुम्हें जीवित देखा नहीं, मैं कैसे सम्मति दे सकता हूँ, जो कुछ तुमने कहा ठीक होगा।"

वह बोली—"मैं कैसे विश्वास दिलाऊँ कि इन दो गढ़ों में लज्जा शील दो नेत्र देखने वालों पर बिजलियाँ गिराते थे। खेद है कि तुम मेरी वास्तविक मुस्कान का अनुमान इन हड्डियों के खुले मुखड़े से नहीं लगा सकते। इन हड्डियों के चहुं ओर जो सौन्दर्य था अब उसका नाम तक बाकी नहीं है। मेरे जीवन के क्षणों में कोई योग्य से योग्य डाक्टर भी कल्पना न कर सकता था कि मेरी हड्डियाँ मानव शरीर की रूप रेखा के वर्णन के काम आयेंगी। मुझे वो दिन याद हैं जब मैं चला करती थी तो प्रकाश की किरणें मेरे एक-एक बाल से निकल कर प्रत्येक दिशा को प्रकाशित करती थीं। मैं अपनी बाहों को घंटों देखा करती थी। आह—यह वो बाहें थीं, जिसको मैंने दिखाईं अपनी ओर

आसक्त कर लिया। सम्भवतः सुभद्रा को भी ऐसी बाहें नसीब न हुई होंगी। मेरी कोमल और पतली उँगलियाँ मृणाल को भी लजाती थीं। खेद है कि मेरे इस नग्न ढाँचे ने तुम्हें मेरे सौंदर्य के विषय में सर्वथा झूठी सम्मति निर्धारित करने का अवसर दिया। तुम मुझे यौवन के क्षणों में देखते तो आँखों से नींद उड़ जाती और वैद्यक ज्ञान का सौदा मस्तिष्क से अशुद्ध शब्द की भाँति समाप्त हो जाता।

मैंने उत्तर दिया—"विश्वास मानो तुम्हारी इस वार्तालाप से वैद्यक की सारी जानकारी मेरे मस्तिष्क से निकल गई है और तुम्हारा मोहक सौंदर्य मेरे हृदय पर अंकित हो गया है। अब आगे कहो।"

उसने कहानी का तारतम्य प्रवाहित रख कर कहा—"मेरे भाई ने निश्चय कर लिया था कि वह विवाह न करेगा। अतः घर में मैं ही एक स्त्री थी। मैं सन्ध्या समय अपने उद्यान में छाया वाले वृक्षों के नीचे बैठती तो सितारे मुझे घूरा करते। और शीतल वायु जब मेरे समीप से गुजरती तो मेरे साथ अठखेलियाँ करती थी। मैं अपने सौंदर्य पर घमंड करती और अनेकों बार सोचा करती कि जिस पृथ्वी पर मेरा पांव पड़ता है यदि उसमें अनुभव करने की शक्ति होती तो प्रसन्नता से फूली न समाती। कभी कहती संसार के सम्पूर्ण प्रेमी युवक घास के रूप में मेरे पांवों पर पड़े हैं। अब ये सम्पूर्ण विचार मुझ को अनेक बार विकल करते हैं कि आह क्या था और क्या हो गया।

मेरे भाई का एक मित्र सतीश कुमार था। जिस ने मैडीकल कालेज से डाक्टरी का प्रमाण पत्र प्राप्त किया था। वह हमारा भी घरेलू डाक्टर था। वैसे उसने मुझ को नहीं देखा था परन्तु मैं

ने उसको एक दिन देख ही लिया और मुझे यह कहने में भी संकोच नहीं कि उसकी सुन्दरता ने मुझ पर विशेष प्रभाव डाला। मेरा भाई अजीब ढंग का व्यक्ति था। संसार के शीत ग्रीष्म से सर्वथा अपरिचित। वह कभी गृहस्थ के कामों में हस्तक्षेप न करता। वह मौन प्रिय और एकान्त में रहा करता था। जिस का परिणाम यह हुआ कि संसार से अलग हो कर एकान्त प्रिय वन गया और साधु महात्माओं का सा जीवन बिताने लगा।

हाँ तो वह नवयुवक सतीश कुमार हमारे यहाँ प्रायः आता। और यही एक नवयुवक था जिस को अपने घर के पुरुषों के अतिरिक्त मुझे देखने का संयोग प्राप्त हुआ था। जब मैं उद्यान में अकेली होती और पुष्पों से लदे हुए वृक्ष के नीचे महारानी की भाँति बैठती, तो सतीश कुमार का ध्यान और भी मेरे हृदय में चुटकियां लेता—"परन्तु तुम, किस चिन्ता में हो। तुम्हारे हृदय में क्या बीत रही है?"

मैंने ठंडी उंसास भरकर उत्तर दिया—"मैं यह विचार कर रहा हूँ कि कितना अच्छा होता कि मैं ही सतीश कुमार होता।"

वह हंस कर बोली —"अच्छा पहिले मेरी कहानी सुन लो फिर प्रेमालाप कर लेना। एक दिन वर्षा हो रही थी, मुझे कुछ बुखार था कि उस समय डाक्टर अर्थात मेरा प्रिय सतीश मुझे देखने के लिये आया। यह प्रथम अवसर था कि हम दोनों ने एक दूसरे को आमने-सामने देखा और देखते ही डाक्टर मूर्ति के समान स्थिर सा हो गया और मेरे भाई की मौजूदगी ने होश संभालने के लिये उसे बाध्य कर दिया। वह मेरी ओर संकेत करके बोला—मैं इन की नब्ज देखना चाहता हूं। मैंने धीरे से अपना

हाथ दुशाले से निकाला। डाक्टर ने मेरी नब्ज पर हाथ रखा। मैंने कभी न देखा था कि किसी डाक्टर ने साधारण ज्वर के निरीक्षण में इतना विचार किया हो। उसके हाथ की उंगलियाँ काँप रही थीं। कठिन परिश्रम के पश्चात उसने मेरे ज्वर को अनुभव किया। किन्तु वह मेरा ज्वर देखते-देखते स्वयं ही बीमार हो गये। क्यों तुम इस बात को मानते हो या नहीं ?"

मैंने डरते-डरते कहा—"हाँ बिल्कुल मानता हूं। मनुष्य की अवस्था में परिवर्तन उत्पन्न होना क्या कठिन है ?"

वह बोली—"कुछ दिनों परीक्षण करने से ज्ञात हुआ कि मेरे हृदय में डाक्टर के अतिरिक्त और किसी नवयुवक का विचार तक नहीं। मेरा कार्यक्रम था। सन्ध्या समय बसन्ती रंग की साड़ी पहन कर बालों में कंघी करके, फूलों का हार गले में डाल कर, दपर्ण हाथ में लिये बाग़ में चली जाती और पहरों देखा करती। क्यों क्या दपर्ण देखना बुरा है ?"

मैंने घबरा कर उत्तर दिया। "—नहीं तो।"

उसने कहानी का सिल-सिला कायम रखते हुए कहा—दपर्ण देख कर मैं ऐसा अनुभव करती थी जैसे मेरे दो रूप हो गये हैं अर्थात मैं स्वयं ही सतीश कुमार बन जाती और स्वयं ही अपने प्रतिबिम्ब को प्रेमिका समझ कर उसपर तनमन न्योछावर करती। यह मेरा बहुत ही प्रिय मनोरंजन था और मैं घंटों इस में व्यतीत कर देती। अनेकों बार ऐसा हुआ कि मध्यान्ह को पलंग पर बिस्तर बिछा कर और एक हाथ को बिस्तर पर उपेक्षा से फैंक दिया। ज़रा आँख झपकी तो सपने में देखा कि सतीश कुमार आया और मेरे हाथ को चूम कर चला गया.....बस अब मैं कहानी समाप्त करती हूँ, तुम्हें तो नींद आ रही है।"

मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ चुकी थी। अतः मैंने नम्रता भरे स्वर में कहा—"नहीं तुम कहे जाओ, मेरी जिज्ञासा बढ़ती जाती है।"

वह कहने लगी—"अच्छा सुनो! थोड़े दिनों में ही सतीश कुमार का कारोबार बहुत बढ़ गया और उसने हमारे मकान के नीचे के भाग में अपनी डिस्पेन्सरी खोल ली। जब उसे रोगियों से अवकास मिलता तो मैं उसके पास जा बैठती और हंसी ठट्ठों में विभिन्न दवाओं का नाम पूछती रहती। इस प्रकार मुझे ऐसी दवाऐं भी ज्ञात हो गईं जो विषैली थीं। सतीश कुमार से जो कुछ मैं मालूम करती वह बड़े प्रेम और नम्रता से बताया करता। इस प्रकार एक लम्बा समय बीत गया और मैंने अनुभव करना आरम्भ किया कि डाक्टर होश हवास खोए सा रहता है। और जब कभी मैं उसके सम्मुख जाती हूं तो उसके मुख पर मुर्दनी सी छा जाती है। परन्तु ऐसा क्यों होता है? इसका कोई कारण ज्ञात न हुआ। एक दिन डाक्टर ने मेरे भाई से गाड़ी मांगी। मैं पास बैठी थी। मैंने भाई से पूछा-डाक्टर इस समय रात में कहां जायेगा? मेरे भाई ने उत्तर दिया —"तबाह होने को।" मैंने अनुरोध किया कि मुझे अवश्य बताओ वह कहाँ जा रहा है? भाई ने कहा–वह विवाह करने जा रहा है।" यह सुन कर मुझ पर मूर्छा सी छा गई। किन्तु मैंने अपने आप को संभाला और भाई से फिर पूछा–क्या वह सचमुच विवाह करने जा रहा है या मज़ाक करते हो? उसने उत्तर दिया—"सत्य है, आज डाक्टर दुल्हन लायेगा?"

मैं वर्णन नहीं कर सकती कि यह बात मुझे कितनी कष्टप्रद अनुभव हुई। मैंने अपने हृदय से बार-बार पूछा कि डाक्टर

ने मुझ से यह बात क्यों छुपा कर रखी। क्या मैं उसको रोकती कि विवाह मत करो ? इन पुरुषों की बात का कोई विश्वास नहीं।

मध्यान्ह डाक्टर रोगियों को देख कर डिस्पेन्सरी में आया और मैंने पूछा—"डाक्टर साहब क्या यह सत्य है कि आज आप का विवाह है ?" यह कह कर मैं बहुत हंसी और डाक्टर यह देखकर कि मैं इस बात को हंसी में उड़ा रही हूँ, न केवल लज्जित हुआ बल्कि कुछ चिन्तित सा हो गया। फिर मैंने सहसा पूछा—"डाक्टर साहब जब आप का विवाह हो जाएगा तो क्या आप फिर भी लोगों की नब्ज देखा करेंगे ? आप तो डाक्टर हैं और अन्य डाक्टरों की अपेक्षा प्रसिद्ध भी हैं कि आप शरीर के सम्पूर्ण अंगों की दशा जानते हैं, किन्तु खेद है कि आप डाक्टर होकर किसी के हृदय का पता नहीं लगा सकते कि वह किस दशा में है। वस्तुतः हृदय भी शरीर का एक भाग है।"

मेरे शब्द डाक्टर के हृदय में तीर की भाँति लगे। परन्तु वह मौन रहा।

: ४ :

लगन का मुहुर्त बहुत रात गये निश्चित हुआ था और बारात देर से जानी थी। अतः डाक्टर और मेरा भाई प्रतिदिन की भाँति शराब पीने बैठ गये। इस मनोविनोद में उनको बहुत देर हो गई।

ग्यारह बजने को थे कि मैं उनके पास गई और कहा—"डाक्टर साहब ग्यारह बजने वाले हैं आप को विवाह के लिए तैयार होना चाहिये। वह किसी सीमा तक सुरूर में हो गया था। बोला—अभी जाता हूँ। फिर वह मेरे भाई के साथ बातों में तल्लीन हो गया और मैंने अवसर पाकर विष की पुड़िया, जो मैंने दोपहर को डाक्टर की अनुपस्थिति में उसकी आलमारी से निकाली थी शराब के गिलास में, जो डाक्टर के सामने रखा हुआ था, डाल दी। कुछ क्षणों पश्चात् डाक्टर ने अपना गिलास खाली किया और दुल्हा बनने को चला गया। मेरा भाई भी उसके साथ चला गया।

मैं अपने दो मंज़िले कमरे में गई और अपना नया बनारसी दुपट्टा ओढ़ा, माँग में सिन्दूर भरा और पूरी सुहागन बन कर उद्यान में निकली। जहाँ प्रतिदिन सन्ध्या समय बैठा करती थी। उस समय चाँदनी छिटकी हुई थी, वायु में कुछ सिहरन उत्पन्न हो गई थी और चम्बेली की सुगन्ध ने उद्यान को महका दिया था। मैंने पुड़िया की शेष दवा निकाली और मुख में डाल कर एक चुल्लू पानी पी लिया। थोड़ी देर में मेरे सिर में चक्कर आने लगे, आँखों में धुन्धलापन छा गया। चाँद का प्रकाश मद्धम होने लगा और पृथ्वी तथा आकाश, बेल बूटे, मेरा घर जहाँ मैंने अब तक आयु बिताई थी, धीरे-धीरे लुप्त होते हुए ज्ञात हुए। और मैं मीठी नींद सो गई।

डेढ़ साल के पश्चात् सुख स्वप्न से चौंकी तो मैंने क्या देखा कि तीन विद्यार्थी मेरी हड्डियों से डाक्टरी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और एक अध्यापक मेरी छाती की ओर बैंत से संकेत करके

लड़कों को विभिन्न हड्डियों के नाम बता रहा है और कहता है—यहाँ हृदय रहता है, जो विवाह और दुख के समय धड़का करता है और यह वह स्थान है जहाँ उठती जवानी के समय फूल निकलते हैं। अच्छा अब मेरी कहानी समाप्त होती है। मैं विदा होती हूँ, तुम सो जाओ।"

—:*:—

मौन सौंदर्य

जिस समय लड़की का नाम शोभा रखा गया तो कौन कह सकता था कि वह बड़ी होकर अभागी सिद्ध होगी। वह यद्यपि बोलने की शक्ति से वंचित थी, तब भी ना समझ न थी। वह इस बात को समझती थी कि भगवान ने उसे अपने माता पिता के घर निरादर और अपमान के लिये भेजा है। इस लिये सर्व साधारण से दूर रहने का प्रयत्न करती थी। वह जवान होगई थी। इस कारण माता पिता रात दिन चिन्तित रहा करते थे। विशेषतः उसकी माता बहुत उद्विग्न दृष्टि से उसे देखती थी। मां को बेटे की अपेक्षा बेटी से अधिक स्नेह हुआ करता है। उसमें यदि कोई ऐब हो तो वह इस से अपना अपमान अनुभव करती है। शोभा के पिता राम प्रसाद अन्य बेटियों की अपेक्षा उस से अधिक प्रेम करते थे। परन्तु उसकी मां उसे अपने शरीर का एक कुरुप चिन्ह अनुभव करती थी। यदि शोभा में बोलने की शक्ति न थी तो क्या उसके पास बड़े काले नेत्र भी न थे। जिस समय कोई विचार उसके मस्तिष्क में उत्पन्न होता तो उसके होंठ स्वयं ही हिलने लगते।

जब हम अपने विचार प्रकट करते और बोलते हैं तो उसके प्रारम्भ के लिये शब्दों का निर्वाचन करना कोई सरल काम

नहीं होता। विचार प्रकट करने का एक ढंग हुआ करता है जो प्राय: ग़लत भी होता है। इस में पड़कर प्राय: हम भी अशुद्धि कर जाते हैं। किन्तु काले नेत्र तो किसी बात को प्रकट करने के लिये शब्दों के आश्रित नहीं हुआ करते।

मस्तिष्क स्वयं उन पर एक परछाई डालता है और उन में विचारों की झलक प्रकट होकर लुप्त हो जाती है। विचार पुतलियों की कालिख से इस प्रकार प्रकट होता है जिस प्रकार अस्त होने वाला सूर्य या बादलों के बीच चमकने वाली बिजली।

जो मनुष्य जन्म से केवल ज़बान हिलाने के और कोई दूसरी बोलने की शक्ति नहीं रखते, वह आँखों से ज़बान का काम लिया करते हैं। जिन की प्रकट करने की शक्ति अथाह समुद्र की भाँति हुआ करती है और जिन में प्रात: सायं प्रकाश अन्धकार में लुप्त हो जाता है। मानो गूंगों में प्रकृति का एक सुन्दर मौन भाव छुपा हुआ रहता है।

शोभा चाँदी पुर के एक साधारण छोटे से मकान में रहा करती थी। नदी के किनारे-किनारे बस्ती चली गई थी। उसके दोनों ओर छाया वाले वृक्ष थे। इस प्रकार उगे हुए वृक्षों के कारण मानों नदी की सुन्दर देवी अपने राज सिंहासन से उतर कर सुन्दर उपवन की स्वामिनी बन गई थी। उसका प्रवाह अपने आप से बेखबर अपने कार्य पूर्ति में तल्लीन रहता और वह नदी प्रत्येक से दुवाएं लेती। राम प्रसाद का मकान उस नदी की ओर बस्ती से निकला हुआ था और नौका में बैठने वालों को बस्ती की हर एक झौंपड़ी और मकानों का प्रत्येक भाग

स्पष्ट दिखाई देता। मालूम नहीं इस सांसारिक धन सम्पत्ति के बीच उस छोटी लड़की का भी किसी को ध्यान था या नहीं। जो अपना काम पूरा करके चुपके से किनारे पर आ बैठती और प्रकृति की मौनता से बातें करती रहती थी।

उस स्थान पर झरने के प्रवाह की आवाज़, गाँव के निवासियों का शोर गुल, नाविकों के मधुर अलाप, और पत्तियों की खड़खड़ाहट परस्पर मिल कर उसके हृदय को उद्विग्न कर जातीं। यही शोर-गुल और प्रकृति की अनेक रूपता उस लड़की की बोली थी, काली आँखें ज़बान थी, जिन पर लम्बो-लम्बी पलकें छाया किये हुए थी और यही शोर-गुल उसके समीप दुनिया वालों की ज़बान थी।

उस स्थान पर शोभा के पास वृक्षों की चोटियों से लेकर मौन तारों तक रुलाने और ठंडी साँसें भरने की सामग्री प्राप्त थीं।

ठीक मध्याह्न समय जब नाविक और मछिहारे भोजन करने के लिए चले जाते, जब गाँव वाले सो जाते, चिडियाँ मौन हो जातीं, घाटियों पर सून्यता छा जाती, संसार थक कर चुप हो जाता और एकान्त एक भयावना रूप धारण कर लेता, उस समय ऊँचे आकाश के नीचे यह गूंगी लड़की किसी छोटे से वृक्ष की छाया में बैठ जाती।

शोभा सहेलियों से वंचित थी। उसके घर में दो गाएं थीं। उन दोनों गायों ने शोभा के मुंह से अपना नाम कभी न सुना था। इतना होने पर भी उसके पाँव की आहट को भली भाँति पहचान लिया करती थीं। यह माना कि उनके पास ज़बान न थी, किन्तु उसके संकेतों से वो इतनी प्रभावित होतीं थीं जितना

कि एक वृद्ध मनुष्य से भी न हो सकती थीं। शोभा उन तक आती और उनकी गर्दन में अपनी दोनों बाहें डाल दिया करती थी। अपने कोमल कपोलों को उनकी थूथनियों से मला करती। शोभा कम से कम तीन बार उन्हें प्रतिदिन देखने आती और अधिक से अधिक जितनी बार भी हो सके। जब उसे कोई बुरा भला कहता तो वह अपने उन गूंगे साथियों के पास चली जाती। चाहे वह समय उसके आने का हो या न हो और गायें उसकी आत्मा की पीड़ा और मूक जीवन का अपने हृदय पर प्रभाव अनुभव करतीं। उसके समीप आकर वे अपने सींग आहिस्ता-आहिस्ता उसके हाथों से रगड़ती रहतीं और अपनी विकलता तथा अपने मूक ढंगों से उसकी चिन्ता दूर करने का प्रयत्न करतीं।

: २ :

गायों के अतिरिक्त उस घर में कुछ बकरियाँ और एक बिल्ली का बच्चा भी था। परन्तु वह उनसे इतना प्रेम न करती थी। वैसे वो सब उसे वैसी ही दृष्टि से देखा करते थे। दिन और रात में जब भी बिल्ली का बच्चा अवसर पाता उसकी गोद में आकर लेट जाता और जब शोभा अपनी उंगलियाँ उसकी पीठ और गर्दन पर फेरती तो वह सो जाता।

मनुष्यों की दुनिया में भी शोभा का एक मित्र था। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उसके सम्बन्ध उसके साथ किस प्रकार के थे।

शोभा के साथी के पास बोलने की शक्ति थी और उसकी आवाज़ शोभा की मूकवकृता को भी किसी समय छीन लेती। शोभा का यह साथी गोसाईं का छोटा लड़का प्रताप था। जो इन दिनों बेकार था और उस के माता पिता की आशाएं आजीविका अर्जन के सम्बन्ध में उसकी ओर से समाप्त हो चुकी थीं।

बेकार मनुष्य अपने प्रियों को अप्रसन्न करके दूसरे व्यक्तियों में प्रिय हो जाया करते हैं और चूंकि उसके पास कोई काम नहीं होता अतः वे सर्व साधारण की सम्पत्ति हो जाते हैं। जिस प्रकार एक नगर को एक खुले हुए मैदान की अवश्यकता होती है, ताकि रहने वाले सुख का सांस ले सकें, उसी प्रकार एक गाँव को कुछ बेकार व्यक्तियों की भी आवश्यकता होती है। ताकि धनवान अपना बेकार समय उनकी गप्प बाज़ी यानी कपोल कल्पनाओं में व्यतीत कर सकें।

प्रताप का विशेष व्यसन मछलियाँ पकड़ना था। इस व्यसन में वह अपना बहुत सा समय नष्ट करता और प्रतिदिन मध्याह्न के लगभग उसमें तल्लीन पाया जाता।

अपने इसी व्यसन के कारण वह शोभा से परिचय प्राप्त कर सका। चाहे वह कुछ भी करता हो परन्तु एक मित्र का मूल्य समझता था। प्रताप शोभा की मूकता के कारण उसका बहुत सम्मान करता था और प्रायः उसकी प्रतिक्षा में रहता था।

शोभा प्रतिदिन इमली के वृक्ष के नीचे बैठा करती और प्रताप ज़रा दूर हट कर अपनी डोर डाले रहता। प्रतिदिन वह अपने साथ कुछ पान लाया करता था जिन को शोभा इमली के वृक्ष के नीचे बैठी हुई बनाया करती थी।

देर तक बैठे रहने और यह स्थिति देखने के बीच शोभा की यह उत्कट अभिलाषा होती थी कि वह अपने आप को प्रताप का किसी प्रकार सहायक सिद्ध कर दे। साथ में यह भी सिद्ध कर दे कि वह इस संसार पर व्यर्थ का बोझा नहीं है। किन्तु वहाँ इस भाव प्रकट करने की कोई सामग्री ही उपस्थित न थी। वह भगवान से एक अपूर्व शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करती, ताकि वह अपनी करामात से प्रताप को चकित कर सके और फिर वह प्रताप की ज़बान से यह शब्द सुन सके—"मुझे सपने में भी इस बात की कल्पना न थी कि मेरी शोभा ऐसा कर सकेगी।"

यदि शोभा अप्सरा होती तो वह नदी में गोता लगा कर एक मछली की अपेक्षा प्रताप के लिए बहुत से जवाहरात ले आती और तब प्रताप शिकार छोड़ कर ऊपर से नीचे तक आश्चर्य की प्रतिमा बन जाता। उस समय शोभा हीरे जवाहर से चमकने वाले शहर के बादशाह की बेटी मालूम होती। परन्तु ऐसा न हो सका, क्योंकि असम्भव था। वैसे असम्भव तो वास्तव में कोई काम नहीं ··किन्तु कठिनाई तो यह थी कि वह किसी भी राज्य परिवार में पैदा न हुई थी, बल्कि एक निर्धन परिवार की पुत्री थी और इस कारण गोस्वामी के लड़के प्रताप को आश्चर्य चकित करने का कोई साधन न पाती थी।

शोभा जवान होती गई और धीरे-धीरे अपने आप को जानती गई। इसी बीच में एक अकथनीय विचार समुद्र के तट से उठने वाली लहरों की भाँति, जब कि पूर्ण चन्द्रमा होता उसके मस्तिष्क में उत्पन्न होता और वह अपने आप

को ऊपर से नीचे तक देखती और विचार करती। किन्तु वह ऐसा कोई उत्तर न पाती थी जिसे वह समझ न सकती हो।

एक दिन रात को जब बहुत देर पश्चात् पूर्ण चन्द्रमा प्रकट हुआ था उसने अपने मकान का द्वार ज़रा धीरे-धीरे और डरते हुए बाहर झाँकने के लिये खोला। बाहर झाँका तो उस समय प्रकृति भी शोभा की भाँति अकेली आकाश की ओर देख रही थी।

: ३ :

शोभा का व्यवस्थित, दृढ़ और युवा जीवन उसकी यह दशा देख कर उद्विग्न हो उठा और चिन्ता तथा दुख से उसके हृदय का प्याला भर गया। पहले भी वह अकेली थी। किन्तु इस एका की दशा ने उसके विचार को और भी दृढ़ बना दिया। उस समय उस का हृदय और अधिक भारी हो गया। वह ज़बान से एक शब्द भी न निकाल सकी।

शोभा के विवाह की चिन्ता ने उसके माता-पिता को बहुत बड़ी कठिनाई में डाल दिया था। क्योंकि बिरादरी वाले प्रायः उनको बुरा भला कहते और बिरादरी से निकाल देने का भय दिखाते थे। आखिर दुखी होकर रामप्रसाद ने अपनी पत्नी से कहा—"हम को कलकत्ते चले जाना चाहिये।" और इस निश्चय के पश्चात् वह एक अपरिचित स्थान पर जाने के लिये तैयार हो गये। यह देख कर शोभा का हृदय भर आया, नेत्र अश्रुओं से भर गये। इन तमाम बातों के बीच एक दिन मध्यान्ह प्रताप शिकार करते-करते शोभा से कहने लगा—"तुम्हारे पिता ने तुम्हारा वर खोज लिया है और अब कुछ हीं दिनों में तुम्हारा विवाह होने वाला है। देखो! तुम मुझे बिल्कुल ही न भुला

जाना" यह कह कर वह अपने काम में संलग्न हो गया।

जिस प्रकार भयभीत हरिनी अपने शिकारी का मुख निहारती रहती है और अपनी मूक पीड़ा में पूछती है कि मैं ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। इस प्रकार शोभा प्रताप की ओर देखती रही और वह उस दिन अधिक समय तक न बैठी।

शोभा का पिता रामप्रसाद अपने शयनकक्ष में बैठा हुक्का पी रहा था कि शोभा ने उसे देख कर रोते हुए अपने आप को उसके पाँव पर ला डाला। रामप्रसाद ने उसे साँत्वना देनी चाही किन्तु उसके कपोल भी अश्रुओं से भीग गये।

अन्त में यह निश्चय किया कि दूसरे दिन प्रातः काल कलकत्ते को चले जाना चाहिये। शोभा ने अपने पुराने मित्र गायों के समीप आकर बिदा ली, एक वार फिर उनको अपने हाथों से खिलाया पिलाया, उनको गले से लगाया, और उनके मुखों को ध्यान से देखा। उस समय उसकी वे आँखें जो कि जबान का काम देती थीं, तीव्रता से अश्रु बहाने लगीं। जिस रात की यह घटना है, वह चाँद की दस तारीख थी।

: ४ :

शोभा अपने कमरे से निकल कर नदी तट पर आ लेटी और अपने दोनों हाथ पृथ्वी पर इस प्रकार फैला दिये जैसे वह अपनी निर्दयी माँ से कह रही हो—"माँ मुझे प्रताप से अलग न होने दो।"

एक दिन कलकत्ते के किसी मकान में शोभा की माँ ने शोभा को बड़ी सावधानी से कपड़े पहनाए, उसके केशो को गूंथा, आभूषणों से सजाया और उसके सौंदर्य को चमकाने का बहुत प्रयत्न किया। यह सब देख कर शोभा के नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी। उसकी माँ ने सोचा कि सम्भवतः यह दुखित है।

इस बीच में वर वधु को देखने के लिए अपने मित्रों सहित आया। शोभा के माता-पिता चिन्तित थे कि देखो ये देवता शोभा को पसन्द करता है या नहीं। निर्वाचित वर के सन्मुख भेजने से पूर्व शोभा की माँ शोभा को मूक रहने की चेतावनी दे चुकी थी। परन्तु उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह विकल थी। वर ने काफी समय तक ऊपर से नीचे तक शोभा को निरखा परखा और केवल यह कहा—"ऐसी विशेष बुरी भी नहीं।"

उसने उसके रोने पर ध्यान दिया और सोचा कि संभवतः यह उसके कोमल हृदय होने का प्रमाण है। अश्रुओं ने शोभा का महत्व और भी बढ़ा दिया। वर ने उसमें कोई कमी न पाई। अन्त में एक शुभ दिन विवाह के लिए निश्चित हुआ और विवाह हो गया। इसके पश्चात् शोभा के माता-पिता अपने देश वापस आ गये। उन्होंने भगवान् का आभार माना कि वह समाज तथा संसार की बुराई से बच गये। कुछ दिनों पश्चात् वर को मालूम हुआ और सब को मालूम हो गया कि वधु गूंगी है। यदि एक आध व्यक्ति को इस की खबर न हुई तो इस में शोभा का क्या दोष था। उसने तो किसी को भी धोका देने का प्रयत्न किया न था।

वह प्रत्येक पर दृष्टि डालती, परन्तु कोई उस की बात न समझ सकता था। आह, बचपन से जो उसकी बोली को समझते थे वो उसके पास न थे। परन्तु खेद है यदि उसके माता-पिता उसकी भावनाओं को समझते और उसका हाथ प्रताप के हाथों में सौंप देते तो कितना अच्छा होता। मूक सौंदर्य को भी सम्मान प्राप्त हो जाता।

—:*:—

कवि का हृदय

चाँदनी रात में भगवान् विष्णु बैठे मन ही मन में गुनगुना रहे थे—

मैं विचार किया करता था कि मनुष्य सृष्टि का सब से सुन्दर निर्माण है। किन्तु मेरा विचार भ्रामक सिद्ध हुआ। कमल के उस फूल को, जो वायु के झोंकों से हिलता है, मैं देख रहा हूँ कि वह सम्पूर्ण जीव मात्र से कितना अधिक पवित्र और सुन्दर है। उसकी पंखड़ियाँ अभी-अभी प्रकाश से खिली हैं। वह ऐसा आकर्षक है कि मैं अपनी दृष्टि उस पर से नहीं हटा सकता। हाँ, मानवों में इसके समान कोई वस्तु विद्यमान नहीं।

विष्णु भगवान् ने एक दीर्घ ठंडी साँस खैंची। उसके एक क्षण पश्चात सोचने लगे।

आखिर किस प्रकार मुझ को अपनी शक्ति से एक नवीन अस्तित्व उत्पन्न करना चाहिये, जो मनुष्यों में ऐसा हो जैसा कि फूलों में कमल है। जो आकाश और पृथ्वी दोनों के लिये सुख तथा प्रसन्नता का कारण बने। ऐ कमल तू एक सुन्दर युवती के रूप में परिवर्तित हो जा और मेरे सामने खड़ा हो।

जल में एक हल्की सी लहर उत्पन्न हुई, जैसे कृष्णा चिड़िया के पंखों से प्रकट होती है। रात अधिक प्रकाशमान हो गई।

चाँद पूरी चमक के साथ चमकने लगा। परन्तु कुछ समय पश्चात् सहसा सब मौन हो गये, जादू पूरा हो गया। भगवान के सम्मुख कमल मानवी रूप में खड़ा था।

वह ऐसा सुन्दर रूप था कि स्वयं देवता को भी देख कर आश्चर्य हुआ। उस रूपवती को सम्बोधित करके विष्णु भगवान बोले—"तुम इस से पहले सरोवर का फूल थीं, अब मेरी कल्पना का फूल हो, बातें करो।"

सुन्दर युवती ने बहुत धीरे से बोलना आरम्भ किया। उसका स्वर ठीक ऐसा था जैसे कमल की पंखड़ियां प्रातः समीरण के झोंकों से बज उठती हैं।

"महाराज आपने मुझको मानवी रूप में परिवर्तित किया है, कहिये अब आप मुझे किस स्थान में रहने की आज्ञा देते हैं। महाराज पहले मैं पुष्प थी तो वायु के थपेड़ों से डरा करती थी और अपनी पंखड़ियाँ बन्द कर लेती थी। मैं वर्षा और आँधी से भय मानती थी, बिजली और उसकी कड़क से मेरे हृदय को डर लगता था, मैं सूर्य की जलाने वाली किरणों से डरा करती थी, आपने मुझ को कमल से इस अवस्था में बदला है अतः मेरी पहले सी प्रकृति है। मैं पृथ्वी से और जो कुछ उस पर विद्यमान हैं, उससे डरती हूँ। फिर आज्ञा दीजिये मुझे कहाँ रहना चाहिये ?"

विष्णु ने तारों की ओर दृष्टि की, एक क्षण तक कुछ सोचा, उसके बाद पूछा—"क्या तुम पहाड़ों की चोटियों पर रहना चाहती हो ?"

"नहीं महाराज, वहाँ बर्फ है और मैं शीत से डरती हूँ।"

"अच्छा मैं सरोवर की तह में तुम्हारे लिये शीशे का महल बनवा दूँगा।"

"जल की गहराइयों में सर्प और भयावने जन्तु रहते हैं इस लिये मुझे डर लगता है।"

"तो क्या तुम को सुनसान उजाड़ स्थान रुचिकर है?"

"नहीं महाराज वन की तूफ़ानी वायु और विजली की भयावनी कड़क को मैं किस प्रकार सहन कर सकती हूँ।"

"तो फिर तुम्हारे लिये कौन सा स्थान निश्चित किया जाए? हाँ, अजन्ता की गुफाओं में साधु रहते हैं क्या तुम सब से अलग किसी गुफ़ा में रहना चाहती हो?"

"महाराज वहाँ बहुत अन्धेरा है, मुझे डर लगता है।"

भगवान विष्णु घुटने के नीचे हाथ रख कर एक पत्थर पर बैठ गये। उनके सामने वही सुन्दरी सहमी हुई खड़ी थी।

: २ :

काफ़ी समय के पश्चात जब प्रातः की उषा किरण के प्रकाश ने पूर्व दिशा में आकाश को प्रकाशित किया, जब सरोवर का जल, ताड़ के वृक्ष और हरे बाँस सुनेहरे हो गये, गुलाबी बगले, नीले सारस, और श्वेत हंस मिल कर पानी पर और मोर जंगल में कूकने लगे तो उसके साथ ही वीणा की मस्त कर देने वाली लै से मिश्रित प्रेम गान सुनाई देना आरम्भ हुआ। भगवान अब तक संसार की चिन्ता में संलग्न थे अब चौंके और कहा—"देखो कवि वाल्मीकि सूर्य को नमस्कार कर रहा है।"

कुछ समय पश्चात वे केसरिया पर्दे जो चाँदनी को ढंके हुए थे उठ गये और सरोवर के समीप कवि वाल्मीकि प्रकट

हुए। मनुष्य के रूप में बदले हुए कमल के फूल को देख कर उन्होंने वाद्ययन्त्र बजाना बन्द कर दिया। वीणा उनके हाथों से गिर पड़ी, दोनों हाथ जंघाओं पर जा लगे। वह खड़े के खड़े रह गये। जैसे सर्वथा किंकर्तव्य विमूढ़ थे।

भगवान ने पूछा—"वाल्मीकि क्या बात है! मौन क्यों हो गये ?"

वाल्मीकि बोले—"महाराज आज मैंने प्रेम का पाठ पढ़ा है।" बस इससे अधिक कुछ न कह सके।

विष्णु भगवान का मुख सहसा चमक उठा। उन्होंने कहा—"सुन्दर कामिनी मुझ को तेरे लिये योग्य स्थान मिल गया। जा कवि के हृदय में निवास कर।"

भगवान ने वाल्मीकि के हृदय को शीशे के समान निर्मल बना दिया था। वह सुन्दरी अपने निर्वाचित स्थान में प्रविष्ट हो रही थी। किन्तु जैसे ही उसने वाल्मीकि के हृदय की गहराई को मापा, उसका मुख पीला पड़ गया और उस पर भय छा गया।

देवता को आश्चर्य हुआ।

बोले—"क्या कवि हृदय में भी रहने से डरती हो ?"

"महाराज आपने मुझे किस स्थान पर रहने की आज्ञा दी है। मुझको तो उस एक ही हृदय में हिमगिरि की चोटियाँ, अजीब जन्तुओं से भरी हुई जल की अथाह गहराई और अजन्ता की अन्धेरी गुफ़ाएं आदि सब कुछ दृष्टिगोचर होता है। इसलिये महाराज मैं भयभीत होती हूँ।

यह सुनकर विष्णु भगवान मुस्कुराये और बोले—"मनुष्य के रूप में बदले हुए फूल सन्तोष रख। यदि कवि के हृदय में बर्फ़ है तो तुम वसन्त ऋतु की गर्म वायु का झोंका बन

जाओगी, जो बर्फ़ को भी पिघला देगा। यदि उसमें जल की गहराई है तो तुम उस गहराई में मोती बन जाओगी। यदि निर्जन वन है तो तुम उसमें सुख और शान्ति के बीज बो दोगी। यदि अजन्ता की गुफ़ा है तो तुम उसके अन्धेरे में सूर्य की किरण बन कर चमकोगी।"

कवि ने इस बीच में बोलने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। उसकी ओर देखते हुए भगवान विष्णु ने इतना और कहा—"जाओ यह वस्तु तुम्हें देता हूँ, इसे लो और सुखी रहो।

–:**:–

समाज का शिकार

मैं जिस युग का वर्णन कर रहा हूँ उसका न आदि है न अन्त।

वह एक बादशाह का बेटा था और उसका महलों में लालन पालन हुआ था। किन्तु उसे किसी के शासन में रहना स्वीकार न था। इस लिये उसने राज महलों को तिलाँजलि देकर जंगलों की राह ली। उस समय देश भर में सात शासक थे। वह सातों शासकों के शासन से बाहर निकल गया और एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ किसी का राज्य न था।

आखिर शहज़ादे ने देश को क्यों छोड़ा ?

इस का कारण स्पष्ट है। कूँवे का पानी अपनी गहराई पर सन्तुष्ट है, नदी का जल तटों की जंज़ीरों में जकड़ा हुआ है किन्तु जो पानी पहाड़ की चोटी पर है उसे हमारे सिरों पर मंडराने वाले बादलों में बन्दी नहीं बनाया जा सकता।

शहज़ादा भी ऊँचाई पर था और यह कल्पना भी न की जा सकती थी कि वह इतना विलासी जीवन छोड़ कर जंगलों, पहाड़ों और मैदानों में दृढ़ता से सामना करेगा। इस पर भी बहादुर शहज़ादा भयावने जंगल को देख कर भयभीत न हुआ।

उस की राह में सात समुद्र थे और न जाने कितनी नदियाँ। किन्तु उसने सब को अपने साहस से पार कर लिया।

मनुष्य शिशु से युवा होता है और युवा से वृद्ध होकर मर जाता है, और फिर शिशु बन कर संसार में आता है। वह इस कहानी को अपने माता-पिता से अनेक बार सुनता है कि भयानक समुद्र के किनारे एक किला है। उस में एक शहज़ादी बन्दी है, जिसे मुक्त कराने के लिये एक शहज़ादा जाता है।

कहानी सुनने के पश्चात् वह चिन्तन की मुद्रा में कपोलों पर हाथ रख कर सोचता कि कहीं मैं ही तो वह शहज़ादा नहीं हूँ।

जिन्नों के द्वीप की हालत सुन कर उसके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे एक दिन शहज़ादी को बन्दी गृह से मुक्ति दिलाने के लिये उस द्वीप को प्रस्थान करना पड़ेगा। संसार वाले मान सम्मान चाहते हैं, धन ऐश्वर्य के इच्छुक रहते हैं, प्रसिद्धि के लिये मरते हैं, भोग विलास की खोज में लगे रहते हैं, किन्तु स्वाभिमानी शहज़ादा सुख चैन का जीवन छोड़ कर अभागी शहज़ादी को जिन्नो के भयानक बन्दी गृह से मुक्ति दिलाने के लिए भयानक द्वीप का पर्यटन करता है।

: २ :

भयानक तूफानी समुद्र के सामने शहज़ादे ने अपने थके हुए घोड़े को रोका, किन्तु पृथ्वी पर उतरना था कि सहसा दृश्य बदल गया और शहज़ादे ने आश्चर्य चकित दृष्टि से देखा कि सामने एक बहुत बड़ा नगर बसा हुआ है। ट्राम चल रही है, मोटरें दौड़ रही हैं, दुकानों के सामने खरीदारों की और दफ्तरों

से सामने क्लर्कों की भीड़ है। फैशन के मतवाले चमकीले वस्त्रों से सज्जित चहुँ ओर घूम फिर रहे हैं। शहज़ादे की यह दशा की पुराने कुर्ते में बटन भी लगे हुए नहीं। धोती मैली, जूता फट गया, हरेक व्यक्ति उसे घृणा की दृष्टि से देखता है किन्तु उसे चिन्ता नहीं। उसके सामने एक ही उद्देश्य है और वह अपनी धुन में मगन है।

अब वह नहीं जानता की शहज़ादी कहाँ है ?

वह एक अभागे पिता की अभागी बेटी है। धर्म के भूतों ने उसे समाज की मोटीं जंजीरों में जकड़ कर छोटी अन्धेरी कोठरी के द्वीप में बन्दी बना दिया है। चहुं ओर पुराने रीति रिवाज और रूढ़ियों के समुद्र घेरा डाले हुए हैं।

क्योंकि उसका पिता निर्धन था और वह अपने होने वाले दामाद को लड़की के साथ अमूल्य धन सम्पति न दे सकता था इस लिये किसी सज्जन खान्दान का कोई शिक्षित नव युवक उसके साथ विवाह करने पर सहमत न होता था।

लड़की की आयु अधिक हो गई। वह रात-दिन देवताओं की पूजा अर्चना में लीन रहती थी। उसके पिता का स्वर्गवास हो गया और वह अपने चाचा के पास चली गई।

चाचा के पास नकद रुपया भी था और काफी मकान आदि भी। अब उसे सेवा के लिये मुफ्त की सेविका मिल गई। वह सवेरे से रात के बारह बजे तक घर के काम काज में लगी रहती।

बिगड़ी दशा का शहज़ादा उस लड़की के पड़ौस में रहने लगा। दोनों ने एक दूसरे को देखा। प्रेम की जंजीरों ने उनके हृदयों से विवाह कर दिया। लड़की जो अब तक पैरों से मली

हुई कोमल कलि की भाँति थी उसने प्रथम बार सन्तोष और शान्ति का साँस लिया।

किन्तु धर्म के भूत यह किस प्रकार सहन कर सकते थे कि कोई दुखित स्त्री लोहे की जंजीरों से छुटकारा पाकर सुख का जीवन व्यतीत कर सके।

उसका विवाह क्या हुआ एक प्रलय उपस्थित हो गई। प्रत्येक दिशा में शोर मचा कि धर्म संकट में है। धर्म संकट में है।

चाचा ने मूंछों पर ताओ देकर कहा—चाहे मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति बरबाद ही क्यों न हो जाए, अपने कुल के रीति रिवाजों की रक्षा करूँगा।

बिरादरी वाले कहने लगे—हम समाज की सुरक्षा हेतु लाखों रुपया बलिदान कर देंगे और एक धर्म के पुजारी सेठ ने कहा—"भाई कलियुग है कलियुग। यदि हम अचेत रहे तो धर्म बिजय हो जाएगा। आप सब महानुभाव रुपये पैसे की चिन्ता न करें, यदि यह मेरा महान कोष धर्म के काम न आया तो फिर किस काम आवेगा। तुम तुरन्त इस पापी चाँडाल के विरुद्ध अभियोग आरम्भ करो।"

अभियोग न्यायालय में उपस्थित हुआ। अभियोगी की ओर से बड़े-बड़े वकील अपने गौन फड़काते हुए न्यायालय पहुँचे। अभागी लड़की के विवाह के लिए तो कोई एक पैसा भी खर्च करना न चाहता था किन्तु उसे और उसके पति को जेल भिजवाने के लिये रुपयों की थैलियाँ खुल गईं।

नौजवान अपराधी ने चकित नेत्रों से देखा।

विधान की किताबों को चाटने वाली दीमकें दिन को रात और रात को दिन कर रही थीं।

धर्म के भूतों ने अपने देवी देवताओं की मिन्नत मानीं। किसी के नाम पर बकरे बलिदान किये गये, किसी के नाम पर सोने का तख्त चढ़ाया गया। अभियोग की क्रिया तीव्रगति से आरम्भ हुई। बिगड़ी हुई दशा वाले शहज़ादे की ओर से न कोई रुपया व्यय करने वाला था न कोई पक्ष समर्थन करने वाला।

न्यायधीश ने उसे कठिन कारावास का दंड दिया।

मंदिरों में प्रसन्नता के घंटे घड़ियाल बजाए गये, सम्पूर्ण शक्ति से शंख बजाए गये, देवी और देवताओं के नाम बलि की गई। चढ़ावे चढ़ाये गये, पुजारियों और महन्तों की बन आई। सब आदमी खुशी में परस्पर धन्यवाद और साधुवाद दे कर कहने लगे।

"भाईयो! यह समय कलियुग का है परन्तु ईश्वर की कृपा से धर्म अभी जीवित है।"

: २ :

शहज़ादा अपनी सज़ा काट कर कारावास से वापस आ गया। किन्तु उस का लम्बा चौड़ा पर्यटन अभी समाप्त न हुआ था। वह संसार में अकेला था, कोई भी उसका संगी साथी नहीं। संसार वाले उसे दंडी (सजायाफ्ता) कह कर उस की छाया से भी बचते हैं।

सत्य है इस संसार में राज्य नियम ही ईश्वर है।

फिर ईश्वर के अपराधी से सीधे मुंह बात करना किसे सहन हो सकता है।

लम्बी चौड़ी मुसाफिरी तो उसकी समाप्त न हुई किन्तु उसके चलने का अन्त हो गया। उसके जख्मी पाँव में चलने की शक्ति शेष न रही।

वह थक कर गिर पड़ा, रोगी था......बहुत अधिक रोगी। उस असहाय पथिक की सेवा सुश्रुसा कौन करता।

किन्तु उसकी दुखित अवस्था पर एक सहृदय देवता का हृदय दुखा। उसका नाम "काल" था। उसने शहज़ादे की सेवा सुश्रुसा की। उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरा और उसके साथ शहज़ादा उस संसार में पहुँच गया जहाँ न समाज है और न उसके अन्याय और न अन्यायी।

बच्चा आश्चर्य से अपनी माँ की गोद में यह कहानी सुनता है और अपने फूल से कोमल कपोल पर हाथ रख कर सोचता है, कहीं वह शहज़ादा मैं ही तो नहीं हूँ।

—:*:—

प्रेम का मूल्य

वृहस्पति छोटे देवताओं का गुरु था। उसने अपने बेटे कच को संसार में भेजा कि शंकराचार्य से अमर जीवन का रहस्य मालूम करे। कच शिक्षा प्राप्त करके स्वर्ग लोक को जाने के लिये तैयार था। उस समय वह अपने गुरु की पुत्री देवयानी से विदा लेने के लिये आया।

कच—"देवयानी मैं विदा लेने के लिये आया हूँ। तुम्हारे पिता के चरण कमलों में मेरी शिक्षा पूरी हो चुकी है। कृपा कर के मुझे स्वर्ग लोक जाने की आज्ञा दो।"

देवयानी—"तुम्हारी कामना पूर्ण हुई। जीवन के अमरत्व का वह रहस्य तुम्हें ज्ञात हो चुका है, जिसकी देवताओं को सर्वदा इच्छा रही है। किन्तु तनिक विचार तो करो, क्या कोई और ऐसी वस्तु शेष नहीं जिसकी तुम इच्छा कर सको ?"

कच—"कोई नहीं।"

देवयानी—"बिल्कुल नहीं ? तनिक अपने हृदय को टटोलो और देखो संभवतः कोई बड़ी-छोटी इच्छा कहीं दबी पड़ी हो ?"

कच—"मेरे प्रातः जीवन का सूर्य अब ठीक आकाश पर आ गया है। उसके प्रकाश से तारों का प्रकाश मद्धम पड़ चुका है।

मुझे अब वह रहस्य ज्ञात हो गया है जो जीवन का अमरत्व है।"

देवयानी—"तब तो सम्पूर्ण संसार में तुम से अधिक कोई भी व्यक्ति प्रसन्न न होगा। खेद है कि आज पहली बार मैं यह अनुभव कर रही हूँ कि एक अपरिचित देश में विश्राम करना तुम्हारे लिये कितना कष्टप्रद था। यद्यपि यह सत्य है कि उत्तम से उत्तम वस्तु जो हमारे मस्तिष्क में थी, तुम को भेंट कर दी गई है।"

"इसका तनिक भी विचार मत करो और हर्ष सहित मुझे जाने की आज्ञा दो।"

"सुखी रहो मेरे अच्छे सखा। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये कि यह तुम्हारा स्वर्ग नहीं है। इस मृत्यु लोक में जहाँ तृषा से कंठ में काँटे पड़ जाते हैं हंसना और मुस्कुराना कोई ठिठोली नहीं है। ये ही संसार है जहाँ अधूरी इच्छाएं चहुँ ओर घिरी हुई हैं। जहाँ खोई हुई प्रसन्नता की स्मृति में बार-बार कलेजे में हूक उठती है। जहाँ ठंडी साँसों से पाला पड़ा है। तुम्हीं कहो, यहाँ इस दुनिया में कोई क्या हंसेगा?"

कच—"देवयानी बता, जल्दी बता मुझ से क्या अपराध हुआ।"

देवयानी—"तुम्हारे लिये इस वन को छोड़ना बहुत सरल है। यह वही वन है जिसने इतने वर्षों तक तुम्हें अपनी छाया में रखा और तुम्हें लोरियाँ दे देकर थपकता रहा। तुम्हें अनुभव नहीं होता कि आज वायु किस प्रकार क्रन्दन कर रही है? देखो वृक्षों की हिलती हुई छाया को देखो, उसके पत्तों को देखो, वह वायु में घूम नहीं रहे, बल्कि किसी खोई हुई आशा की भाँति

भटके-भटके फिर रहे हैं। एक तुम हो कि तुम्हारे होटों पर हंसी खेल रही है। प्रसन्नता के साथ तुम विदा हो रहे हो।"

कच—"मैं इस वन को किसी प्रकार मातृ-भूमि से कम नहीं समझता। क्योंकि यहाँ ही मैं वास्तव में आरम्भ से जन्मा हूँ। इसके प्रति मेरा स्नेह कभी कम न होगा।"

देवयानी—"वह देखो सामने बड़ का वृक्ष है। जिसने दिन के घोर ताप में जबकि तुमने पशुओं को हरियाली में चरने के लिये छोड़ दिया था, तुम पर प्रेम से छाया की थी।"

कच—"ऐ वन के स्वामी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। जब और विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्ति हेतु आएं और शहद की मक्खियों की भनभनाहट और पत्तों की सरसराहट के साथ-साथ तेरी छाया में बैठ कर अपना पाठ दोहराएं तो मुझे भी स्मरण रखना।"

देवयानी—"और तनिक वनमती का भी तो ध्यान करो जिसका निर्मल और तीव्र प्रवाह का जल प्रेम संगीत की एक लहर के समान है।"

कच—"आह! उसको बिल्कुल नहीं भूल सकता। उसकी स्मृति सर्वदा बनी रहेगी। वनमती मेरी गरीबी की साथी है। ग्राम की एक तल्लीन युवती की भाँति ओठों पर मुस्कान के साथ अपने सीधे-साधे गीत गुनगुनाते हुए वह निसस्वार्थ सेवा करती है।"

देवयानी—"किन्तु प्रिय सखा तुम्हें स्मरण कराना चाहती हूँ कि तुम्हारा और कोई भी साथी था, जिसने बेहद प्रयत्न किया कि तुम इस निर्धनता के दुःख से भरे जीवन के प्रभाव से प्रभवित नहो। यह दूसरी बात है कि यह प्रयत्न व्यर्थ हुआ।"

कच—"उसकी स्मृति तो जीवन का एक अंग बन चुकी है।"

देवयानी—"मुझे वे दिन स्मरण हैं जब तुम पहली बार यहाँ आये थे। उस समय तुम्हारी आयु एक किशोर अवस्था के लड़के से कुछ ही अधिक थी। तुम्हारे नेत्र मुस्कुरा रहे थे, तुम उस समय उधर वाटिका की बाड़ के समीप खड़े थे।

कच—"हाँ! हाँ! उस समय तुम फूल चुन रही थीं। तुम्हारे शरीर पर श्वेत वस्त्र थे। ऐसा दिखाई देता था जैसे उषा ने अपने प्रकाश में स्नान किया है। तुम्हें सम्भवतः स्मरण होगा मैंने कहा था यदि मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूं तो मेरा सौभाग्य होगा।"

देवयानी—स्मरण क्यों नहीं है। मैंने अश्चर्य से तुम से पूछा था कि तुम कौन हो? और तुम ने अत्यन्त नम्रता से उत्तर दिया था कि मैं इन्द्र की सभा के प्रसिद्ध गुरु 'बृहस्पति' का सुपुत्र हूँ। फिर तुमने बताया कि तुम मेरे पिता से वह रहस्य मालूम करना चाहते हो जिस से मुर्दे जीवित हो सकते हैं।"

कच—"मुझे सन्देह था कि संभवतः तुम्हारे पिता मुझे अपने शिष्यत्व में स्वीकार न करें।"

देवयानी—"किन्तु जब मैंने तुम्हारी स्वीकृति के लिये समर्थन किया तो वह इस विनती को अस्वीकार न कर सके। उन को अपनी पुत्री से इतना अधिक स्नेह है कि उस की वह कोई बात टाल नहीं सकते।"

कच—"और जब मैं तीन बार विपत्तियों के हाथों मारा गया तो तुम्हीं ने अपने पिता को बाध्य किया था कि मुझे दोबारा जीवित करें। मैं इस उपकार को बिल्कुल नहीं विस्मृत कर सकता।"

देवयानी—"उपकार ? यदि तुम उस को विस्मृत कर दोगे तो मुझे बिल्कुल दुःख न होगा। क्या तुम्हारी स्मृति केवल लाभ पर ही दृष्टि रखती है ? यदि यही बात है तो उसका विस्मृत हो जाना ही अच्छा है। प्रति दिन पाठ के पश्चात सन्धया के अन्धेरे और सून्यता में यदि असाधारण हर्ष और प्रसन्नता की लहरें तुम्हारे सिर पर बीती हों तो उन को स्मरण रखो, उपकार को स्मरण रखने से क्या लाभ। यदि कभी तुम्हारे पास से कोई गुज़रा हो, जिस के गीत का एक चुभता हुआ टुकड़ा तुम्हारे पाठ में उलझ गया हो या जिस के वायु में लहराते हुए आँचल ने तुम्हारे ध्यान को पाठ से हटा कर अपनी ओर आकर्षित कर लिया हो। अपने अवकाश के समय में कभी उसको अवश्य स्मरण कर लेना। परन्तु केवल यही, कुछ और नहीं ! सौन्दर्य और प्रेम का याद न आना ही अच्छा है।

कच—"बहुत सी वस्तुएं हैं जो शब्दों द्वारा प्रकट नहीं हो सकतीं।"

देवयानी—"हां, हां, मैं जानती हूं। मेरे प्रेम से तुम्हारे हृदय का एक-एक अणु छिद चुका है और यही कारण है कि मैं बिना संकोच के इस सत्य को प्रकट कर रही हूं कि तुम्हारी सुरक्षा और कम बोलना मुझे पसन्द नहीं। तुम्हें मुझसे अलग होना अच्छा नहीं-यहीं विश्राम करो, कोई ख्याति ही हर्ष का साधन नहीं हैं। अब तुम मुझ को छोड़ कर नहीं जा सकते-तुम्हारा रहस्य मुझ पर खुल चुका है।"

कच—"नहीं देवयानी नहीं, ऐसा न कहो।"

देवयानी—"क्या कहा, नहीं ? मुझ से क्यों झूठ बोलते हो ? प्रेम की दृष्टि छुपी नहीं रहती। प्रति दिन तुम्हारे सिर के तनिक

से हिलाने से, तुम्हारे हाथों के कम्पन से तुम्हारा हृदय तुम्हारी इच्छा मुझ पर प्रकट करता है। जिस प्रकार समुद्र अपनी लहरों के द्वारा काम करता है, उसी प्रकार तुम्हारे हृदय ने तुम्हारी भाव-भंगिमा के द्वारा मुझ तक सन्देश पहुँचाया। सहसा मेरी आवाज़ सुनकर तुम तिलमिला उठते थे। क्या तुम समझते हो कि मुझे तुम्हारी उस दशा का अनुभव नहीं हुआ ? मैं तुम को भली भाँति जानती हूं और इसलिये अब तुम सर्वदा मेरे हो। तुम्हारे देवताओं का राजा भी इस सम्बन्ध को नहीं तोड़ सकता।"

कच—"किन्तु देवयानी तुम्हीं कहो, क्या इतने वर्ष अपने घर और घर वालों से अलग रह कर मैंने इसी लिये परिश्रम किया था ?"

देवयानी—"क्यों नहीं, क्या तुम समझते हो कि संसार में शिक्षा का मूल्य है और प्रेम का कोई मूल्य नहीं ? समय नष्ट मत करो, साहस से काम लो और यह प्रतिज्ञा करो। शक्ति, शिक्षा और ख्याती की प्राप्ति के लिये मनुष्य जो तपस्या और इन्द्रियों का दमन करता है एक स्त्री के सामने इन सबका कोई मूल्य नहीं।"

कच—"तुम जानती हो कि मैंने सच्चे हृदय से देवताओं से प्रतिज्ञा की थी कि मैं जीवन के अमरत्व का रहस्य प्राप्त करके आपकी सेवा में आ उपस्थित होउंगा।"

देवयानी—परन्तु क्या तुम कह सकते हो कि तुम्हारे नेत्रों ने पुस्तकों के अतिरिक्त और किसी वस्तु पर दृष्टि नहीं डाली ? क्या तुम यह कह सकते हो कि मुझे पुष्प भेंट करने के लिए तुम ने कभी अपनी पुस्तकों को नहीं छोड़ा ?

क्या तुम्हें कभी ऐसे अवसर की खोज नहीं रही, कि सन्ध्या काल मेरी पुष्प वाटिका के पुष्पों पर जल छिड़क सको ? सन्ध्या

समय जब नदी पर अन्धकार का वितान तन जाता तो मानो प्रेम अपने दुखित मौन पर छा जाता। तुम घास पर मेरे बराबर बैठ कर मुझे अपने स्वर्गिक गीत गा कर क्यों सुनाते थे? क्या यह सब काम उन षड़यंत्रों से भरी हुई चालाकियों का एक भाग नहीं, जो तुम्हारे स्वर्ग में क्षम्य हैं? क्या इन कृत्रिम युक्तियों से तुम ने मेरे पिता को अपना न बनाना चाहा था और अब विदाई के समय धन्यवाद के कुछ मूल्यहीन सिक्के उस सेविका की ओर फैंकते हो, जोतुम्हारे झूठे छल से छली जा चुकी है?"

"अभिमानी स्त्री वास्तविकता मालूम करने से क्या लाभ? यह मेरा भ्रम था कि मैंने एक विशेष भावना के वश तेरी सेवा की, तो मुझे उसका दंड मिल गया। किन्तु अभी वह समय नहीं आया कि मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकूं कि मेरा प्रेम सत्य था या नहीं। क्योंकि मुझे अपने जीवन का उद्देश्य दिखाई दे रहा है। अब चाहे तेरे हृदय से अग्नि की चिंगारियाँ निकल र कर सम्पूर्ण वायु मंडल को आच्छादित कर लें, तब भी मैं स्वर्ग को अवश्य वापस जाऊंगा। इस बात को अब मैं भली भाँति जानता हूँ कि स्वर्ग अब मेरे लिये स्वर्ग नहीं रहा, देवताओं की सेवा में यह रहस्य तुरन्त ही पहुंचाना मेरा कर्तव्य है। जिस को मैंने कठिन परिश्रम के पश्चात प्राप्त किया हैं। इससे पहिले भी मुझे व्यक्तिगत प्रसन्नता की प्राप्ति का ध्यान तनिक भी नहीं था। क्षमा कर देवयानी मुझे क्षमा कर! सच्चे हृदय से क्षमा का इच्छुक हूँ। इस बात को सत्य जान कि तुझे आघात पहुँचा कर मैंने अपनी कठिनाइयों को दुगना कर लिया है।"

देवयानी—"क्षमा? तुमने मेरे नारी हृदय को पाषाण की भाँति कठोर कर दिया है। वह ज्वाला मुखी की भाँति क्रोध में

भभक रहा है। तुम अपने काम पर वापस जा सकते हो किन्तु मेरे लिये शेष क्या रहा, केवल स्मृति का एक कंटीला बिछोना और एक छुपी हुई लज्जा, जो सर्वदा मेरे प्रेम का उपहास करेगी। तुम एक पथिक के रूप में यहाँ आए धूप से बचने के लिये। मेरे वृक्षों की छाया में आश्रय लिया और अपना समय बिताया। तुमने मेरे उद्यान के सम्पूर्ण पुष्प तोड़ कर एक माला गूंधी और जब चलने का समय आया तो तुमने धागा तोड़ दिया, पुष्पों को धूलि में मिला दिया। मैं अपने दुखित हृदय से शाप देती हूँ कि जो शिक्षा तूने प्राप्त की है वह सब तुझ से विस्मृत हो जाये। दूसरे व्यक्ति तेरे से यह शिक्षा प्राप्त करेंगे किन्तु जिस प्रकार तारे रात में कुंवारी अन्धयारी से सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाते बल्कि अलग रहते हैं, उसी प्रकार तेरी यह विद्या भी तेरे जीवन से अलग रहेगी। व्यक्तिगत रूपमें तुझे इस से कोई लाभ न होगा और यह केवल इस लिये कि तूने प्रेम का अपमान किया, प्रेम का मूल्य न समझा।

—:**:—

भिकारन

अन्धी प्रति दिन मन्दिर के दरवाज़े पर जाकर खड़ी होती, दर्शन करने वाले बाहर निकलते तो वह अपना हाथ फैला देती और नम्रता से प्रश्न करती—"बाबू जी अन्धी पर दया हो जाए।"

वह जानती थी कि मन्दिर के आने वाले सहृदय और श्रद्धालु हुआ करते हैं। उसका यह अनुमान असत्य न था। आने वाले दो चार पैसे उस के हाथ पर रख ही देते थे। अन्धी उनको दुवाएं देती और उनकी सहृदयता को सराहती। स्त्रियाँ भी उसके पल्ले में थोड़ा बहुत अनाज डाल जाया करती थीं।"

सुबह से शाम तक वह इसी प्रकार हाथ फैलाए खड़ी रहती। उसके पश्चात मन ही मन में भगवान् को प्रणाम करती और अपनी लाठी के सहारे-झोंपड़ी का पथ ग्रहण करती। उकसी झोंपड़ी नगर से बाहर थी। रास्ते में भी वह याचना करती जाती किन्तु राहगीरों में अधिक संख्या श्वेत वस्त्रों वालों की होती, जो पैसे देने की अपेक्षा झिड़कियाँ दिया करते हैं। तब भी अन्धी निराश न होती और उसकी याचना बराबर जारी रहती। झोंपड़ी तक पहुँचते २ उसे दो चार पैसे और मिल जाते।

झोंपड़ी के समीप पहुँचते ही एक दस वर्ष का लड़का उछलता कूदता आता और उससे चिमट जाता। अन्धी टटोल कर उसके मस्तक को चूमती।

बच्चा कौन है? किसका है? कहाँ से आया? इस बात से कोई परिचित नहीं था। पाँच वर्ष हुए पास पड़ोस वालों ने उसे अकेला देखा था। इन्ही दिनों एक दिन सन्ध्या समय लोगों ने उसकी गोद में एक बच्चा देखा, वह रो रहा था, अन्धी उसका मुख चूम-चूम कर उसे चुप करने का प्रयत्न कर रही थी। यह कोई असाधारण घटना न थी, अतः किसी ने भी न पूछा कि बच्चा किस का है। उसी दिन से यह बच्चा अन्धी के पास था और प्रसन्न था। उसको वह अपने से अच्छा खिलाती और पहनाती।

अन्धी ने अपनी झोंपड़ी में एक हाँडी गाड़ रखी थी। सन्ध्या समय जो कुछ मांगकर लाती उस में डाल देती और उसे किसी वस्तु से ढाँप देती! इस लिये कि दूसरे व्यक्तियों की दृष्टि उस पर न पड़े। खाने के लिये अन्न काफ़ी मिल जाता था। उससे काम चलाती। पहले बच्चे को पेट भर कर खिलाती फिर स्वयं खाती। रात को बच्चे को अपने वक्ष से लगा कर वहीं पड़ रहती। प्रातः काल होते ही उसको खिला पिला कर फिर मन्दिर के द्वार पर जा खड़ी होती।

: २ :

काशी में सेठ बनारसी दास बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। बच्चा २ उनकी कोठी से परिचित है। बहुत बड़े देव भक्त और धर्मात्मा हैं। धर्म का उनको बड़ा पक्ष है। दिन के बारह बजे तक यह सेठ

स्नान-ध्यान में संलग्न रहते हैं। उनकी कोठी पर हर समय एक भीड़ लगी रहती थी। कर्ज के इच्छुक तो आते ही थे, परन्तु ऐसे व्यक्तियों का भी तांता बन्धा रहता जो अपनी पूंजी सेठ जी के पास धरोहर रूप में रखने आते थे। सैंकड़ों भिखारी अपनी जमा पूंजी इन्हीं सेठ जी के पास जमा कर जाते थे। अन्धी को भी यह बात ज्ञात थी, किन्तु पता नहीं कि अब तक वह अपनी कमाई यहाँ जमा कराने में क्यों हिचकिचाती रही।

उसके पास काफी रुपये हो गये थे, हाँडी लग-भग पूरी भर गई थी। उस को शंका थी कि कोई उसको चुरा न ले। एक दिन सन्ध्या समय अन्धी ने वह हाँडी उखाड़ी और अपने फटे हुए आँचल में छुपा कर सेठ जी की कोठी पर जा पहुंची।

सेठ जी बही खाते के पृष्ठ उलट रहे थे, उन्हों ने पूछा—"क्या है बुढ़िया ?"

अन्धी ने हाँडी उनके आगे सरका दी और डरते २ कहा—"सेठ जी इसे अपने पास जमा कर लो, मैं अन्धी अपाहिज कहाँ रखती फिरूँगी ?"

सेठ जी ने हाँडी की ओर देख कर कहा—"इसमें क्या है ?"

अन्धी ने उत्तर दिया—"भीक मांग २ कर अपने बच्चे के लिये दो चार पैसे संग्रह किये हैं, अपने पास रखती डरती हूं, कृपया इन्हें आप अपनी कोठी में रख लो।"

सेठ जी ने मुनीम की ओर संकेत करते हुए कहा—"बही में जमा कर लो। फिर बुढ़िया से पूछा—"तेरा नाम क्या है ?"

अन्धी ने अपना नाम बताया, मुनीम जी ने नकदी गिन कर सके नाम से जमा कर ली। अन्धी सेठ जी को आशीर्द देती हुई अपनी झोंपड़ी में चली गई।

: ३ :

दो वर्ष बहुत सुख के साथ बीते। इसके पश्चात् एक दिन लड़के को ज्वर ने आन दबाया। अन्धी ने दवा दारु की, झाड़ फूंक से भी काम लिया, टोने टोटके की परीक्षा की, परन्तु सम्पूर्ण प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। लड़के की दशा दिन प्रति दिन बुरी होती गई, अन्धी का हृदय टूट गया, साहस ने जवाब दे दिया, निराश हो गई। परन्तु फिर ध्यान आया कि सम्भवतः डाक्टर के इलाज से फायदा हो जाए। इस विचार के आते ही वह गिरती पड़ती सेठ जी की कोठी पर जा पहुँची। सेठ जी उपस्थित थे।

अन्धी ने कहा—"सेठ जी मेरी जमा पूंजी में से दस पाँच रुपये मुझे मिल जाएं तो बड़ी कृपा हो। मेरा बच्चा मर रहा है, डाक्टरों को दिखाऊँगी।"

सेठ जी ने कठोर स्वर में कहा—"कैसी जमा पूंजी? कैसे रुपये? मेरे पास किसी के रुपये जमा नहीं हैं।"

अन्धी ने रोते हुए उत्तर दिया—"दो वर्ष हुए मैं आप के पास धरोहर रूप में रख कर गई थी। दे दीजिये बड़ी दया होगी।"

सेठ जी ने मुनीम की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखते हुए कहा—"मुनीम जी ज़रा देखना तो, इसके नाम की कोई पूंजी जमा है क्या? तेरा नाम क्या है री?"

अन्धी की जान में जान आई, आशा बन्धी। पहला उत्तर सुन कर उसने सोचा कि यह सेठ बेईमान है, किन्तु अब सोचने लगी कि सम्भवतः इसे ध्यान न रहा होगा। ऐसा धर्मी व्यक्ति भी भला कहीं झूठ बोल सकता है। उसने अपना नाम बता दिया।

मुनीम ने सेठ जी का संकेत समझ लिया था, बही के पृष्ठ उलट-पलट कर देखा। फिर कहा—"नहीं तो, इस नाम पर एक पाई भी जमा नहीं है।"

अन्धी वहीं जमी बैठी रही। उसने रो-रो कर कहा—"सेठ जी परमात्मा के नाम पर, धर्म के नाम पर, कुछ दे दीजिये। मेरा बच्चा जी जाएगा। मैं जीवन भर आप के गुण गाऊँगी।"

परन्तु पत्थर में जोंक न लगी। सेठ जी ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—"जाती है या नौकर को बुलाऊँ।"

अन्धी लाठी टेक कर खड़ी हो गई और सेठ जी की ओर मुख करके कहा—"अच्छा भगवान् तुम्हें बहुत दे।" और अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

यह आशीष न थी बल्कि एक दुखी का शाप था। बच्चे की दशा बिगड़ती गई, दवा दारू हुई ही नहीं, फायदा क्यों कर होता। एक दिन उसकी अवस्था बड़ी चिन्ता जनक हो गई, प्राणों के लाले पड़ गये, उसके जीवन से अन्धी भी निराश हो गई। सेठ जी पर रह-रह कर उसे क्रोध आता था। इतना धनी व्यक्ति है, दो चार रुपये दे देता तो क्या चला जाता और फिर मैं उससे कुछ दान नहीं मांग रही थी, अपने ही रुपये मांगने गई थी। सेठ जी से उसे घृणा हो गई।

बैठे-बैठे उसको कुछ ध्यान आया। उसने बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और ठोकरें खाती, पड़ती, सेठ जी के पास पहुँची और उनके द्वार पर धरना देकर बैठ गई। बच्चे का शरीर ज्वर से भभक रहा था और अन्धी का कलेजा भी।

एक नौकर किसी काम से बाहर आया। अन्धी को बैठी देख

कर उसने सेठ जी को सूचना दी। सेठ जी ने आज्ञा दी कि उसे भगा दो।

नौकर ने अन्धी से चले जाने को कहा, किन्तु वह उस स्थान से न हिली। मारने का भय दिखाया, पर वह टस से मस न हुई। उसने फिर अन्दर जाकर कहा कि वह नहीं टलती।

सेठ जी स्वयं बाहर पधारे। देखते ही पहचान गये। बच्चे को देख कर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि उसकी शक्ल सूरत उनके मोहन से बहुत मिलती-जुलती है। सात वर्ष हुए जब मोहन किसी मेले में खो गया था। उसकी बहुत खोज की, पर उसका कोई पता न मिला। उन्हें स्मरण हो आया कि मोहन की जांघ पर एक लाल रंग का चिन्ह था। इस विचार के आते ही उन्होंने अन्धी की गोद के बच्चे की जांघ देखी। चिन्ह अवश्य था, परन्तु पहले से कुछ बड़ा। उनको विश्वास हो गया कि बच्चा उन्हीं का मोहन है। उन्होंने तुरन्त उसको छीन कर अपने कलेजे से चिमटा लिया। शरीर ज्वर से तप रहा था। नौकर को डाक्टर लाने के लिये भेजा और स्वयं मकान के अन्दर चल दिये।

अन्धी खड़ी हो गई और चिल्लाने लगी—"मेरे बच्चे को न ले जाओ, मेरे रुपये तो हज़म कर गये अब क्या मेरा बच्चा भी मुझ से छीनोगे?"

सेठ जी बहुत चिन्तित हुए और कहा—"बच्चा मेरा है, यही एक बच्चा है, सात वर्ष पूर्व कहीं खो गया था अब मिला है, अब इस को नहीं जाने दूंगा और लाख यत्न करके भी इस के प्राण बचाउंगा।

अन्धी ने एक ज़ोर का ठहाका लगाया—"तुम्हारा बच्चा है, इस लिये लाख यत्न करके भी उसे बचाओगे। मेरा बच्चा होता तो उसे मर जाने देते, क्यों ? यह भी कोई न्याय है। इतने दिनों तक खून पसीना एक करके उस को पाला है मैं उसको अपने हाथ से नहीं जाने दूँगी।"

सेठ जी की अजीब दशा थी। कुछ करते-धरते बन नहीं पड़ता था। कुछ देर वहीं मौन खड़े रहे फिर मकान के अन्दर चले गये। अन्धी कुछ समय तक खड़ी रोती रही फिर वह भी अपनी झोंपड़ी की ओर चल दी।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रभु की कृपा हुई या दवा ने अपना जादू का सा प्रभाव दिखाया। मोहन का ज्वर उतर गया। होश आने पर उसने आँख खोली तो सर्व प्रथम शब्द उसकी ज़बान से निकला "मां।"

चहुं ओर अपरिचित शक्लें देखकर उसने अपने नेत्र फिर बन्द कर लिये। उस समय से उसका ज्वर फिर अधिक होना आरम्भ हो गया। मां-मां की रट लगी हुई थी, डाक्टरों ने जवाब दे दिया, सेठ जी के हाथ पांव फूल गये, चहुं ओर अन्धेरा दिखाई पड़ने लगा।

"क्या करूं, एक ही बच्चा है, इतने दिनों बाद मिला भी तो मृत्यु उसको अपने चंगुल में दबा रही है इसे कैसे बचाऊं ?"

सहसा उनको अन्धी का ध्यान आया। पत्नी को बाहर भेजा कि देखे कहीं वह अब तक द्वार पर न बैठी हो। परन्तु वह यहाँ कहाँ ? सेठ जी ने फिटन तैयार कराई और बस्ती से बाहर उस की झोंपड़ी पर पहुंचे। झोंपड़ी बिना द्वार के थी, अन्दर गये। देखा कि अन्धी एक फटे पुराने टाट पर पड़ी है और उसके नेत्रों से

अश्रु धार बह रही है। सेठ जी ने धीरे से उसको हिलाया। उसका शरीर भी अग्नि की भाँति तप रहा था।

सेठ जी ने कहा—"बुढ़िया ! तेरा बच्चा मर रहा है, डाक्टर निराश हो गये, रह-रह कर वह तुझे पुकारता है। अब तूही उस के प्राण बचा सकती है। चल और मेरे·········नहीं-नहीं अपने बच्चे की जान बचा ले।"

अन्धी ने उत्तर दिया—"मरता है तो मरने दो, मैं भी मर रही हूँ। हम दोनों स्वर्ग लोक में फिर मां बेटे की तरह मिल जायेंगे। इस लोक में सुख नहीं है यहां मेरा बच्चा सुख में रहे गा। मैं वहाँ उसकी सुचारु रूप से सेवा सुश्रुसा करूंगी।"

सेठ जी रो दिये। आज तक उन्होंने किसी के सामने सिर न झुकाया था किन्तु इस समय अन्धी के पांवों पर गिर पड़े और रो-रो कर कहा—"मामता की लाज रख लो, आखिर तुम भी उस की मां हो। चलो तुम्हारे चलने से वह बच जायेगा।"

मामता शब्द ने अन्धी को विकल कर दिया। उसने तुरन्त कहा—"अच्छा चलो।"

सेठजी सहारा देकर उसे बाहर लाये और फ़िटन पर बिठा दिया और घर की ओर फिटन दौड़ने लगी। उस समय सेठ और अन्धी भिकारन दोनों की एक ही दशा थी। दोनों की यही इच्छा थी कि शीघ्र से शीघ्र अपने बच्चे के पास पहुँच जायें।

कोठी आ गई, सेठ जी ने सहारा देकर अन्धी को उतारा और अन्दर ले गये। और लेजाकर मोहन की चारपाई के समीप उसको खड़ा कर दिया। उसने टटोल कर मोहन के माथे पर हाथ फेरा। मोहन पहचान गया कि यह उसकी मां का हाथ है। उसने

तुरन्त नेत्र खोल दिये, और उसे अपने समीप खड़े हुए देख कर कहा—"मां तुम आ गई।"

अन्धी ने स्नेह से भरे हुए स्वर में उत्तर दिया—"हाँ बेटा, तुम्हें छोड़ कर कहाँ जा सकती हूँ।"

अन्धी भिकारन बुढ़िया मोहन के सिरहाने बैठ गई और उसने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। मोहन को बहुत सुख अनुभव हुआ और वह उसी की गोद में सो गया।

दूसरे दिन से मोहन की दशा अच्छी होने लगी और दस पन्द्रह दिन में वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया। जो काम हकीमों के जोशान्दे, वैद्यों की पुड़ियां और डाक्टरों के मिक्सचर न कर सकते थे वह अन्धी की स्नेहमयी सेवा ने पूरा कर दिया।

मोहन के पूरी तरह स्वस्थ हो जाने पर अन्धी ने विदा मांगी। सेठ जी ने बहुत कुछ कहा सुना कि वह उन्हीं के पास रहजाए परन्तु वह सहमत न हुई, विवश होकर विदा करना पड़ा। जब वह चलने लगी तो सेठ जी ने रुपयों की एक थैली उसके हाथ में दे दी। अन्धी ने मालूम किया "इस में क्या है?"

सेठ जी ने कहा—"इस में तुम्हारी धरोहर है, तुम्हारे रुपये। मेरा वह अपराध........."

अन्धी ने बात काट कर कहा—"यह रुपये तो मैंने तुम्हारे मोहन के लिये संग्रह किये थे, उसी को दे देना।"

अन्धी ने थैली वहीं छोड़ दी और लाठी टेकती हुई चल दी। बाहर निकल कर फिर उस ने उस घर की ओर नेत्र उठाए। उसके नेत्रों से अश्रु वह रहे थे किन्तु वह एक भिखारन होते हुए भी सेठ से महान थी। इस समय सेठ याचक था और वह दाता थी।

अनमोल भेंट

राय चरण बारह वर्ष की आयु से अपने मालिक का बच्चा खिलाने पर नौकर हुआ था। उसके पश्चात् काफ़ी समय बीत गया। नन्हा बच्चा राय चरण की गोद से निकल कर स्कूल में प्रविष्ट हुआ, स्कूल से कालिज में पहुँचा, फिर एक सरकारी स्थान पर लग गया। किन्तु रायचरण अब भी बच्चा खिलाता था, यह बच्चा उसके गोद के पाले हुए अनुकूल बाबू का पुत्र था।

बच्चा घुटनों के बल चल कर बाहर निकल जाता। जब राय चरण दौड़ कर उसको पकड़ता तो वह रोता और अपने नन्हे-नन्हे हाथों से राय चरण को मारता था।

राय चरण हंस कर कहता—"हमारा भैया भी बड़ा होकर जज साहब बनेगा—"जब वह राय चरण को 'चन्ना' कह कर पुकारता तो उसका हृदय बहुत हर्षित होता। वह दोनों हाथ पृथ्वी पर टेक कर घोड़ा बनता और बच्चा उसकी पीठ पर सवार हो जाता।

इन्हीं दिनों में अनुकूल बाबू की बदली पद्मा नदी के किनारे एक ज़िले में हो गई तो नये स्थान की ओर जाते हुए कलकत्ते से

उन्होंने अपने बच्चे के लिये मूल्यवान आभूषण और कपड़ों के अतिरिक्त एक छोटी-सी सुन्दर गाड़ी भी खरीदी।

वर्षा ऋतु थी। कई दिनों से मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ईश्वर-ईश्वर करते हुए बादल फटे। सन्ध्या का समय था। बच्चे ने बाहर जाने के लिये आग्रह किया। राय चरण उसे गाड़ी में बिठा कर बाहर लेगया। खेतों में पानी खूब भरा हुआ था बच्चे ने फूलों का गुच्छा देखकर ज़िद की रायचरण ने उसे बहलाना चाहा किन्तु वह न माना। विवश राय चरण बच्चे का मन रखने के लिये घुटनों पानी में फूल तोड़ने लगा। कई स्थानों पर उसके पाँव कीचड़ में बुरी तरह धंस गये। बच्चा तनिक देर मौन गाड़ी में बैठा रहा फिर उसका ध्यान लहराती हुई नदी की ओर गया, वह चुपके से गाड़ी से उतरा। पास ही एक लकड़ी पड़ी थी उठा ली और भयानक नदी के तट पर पहुँच कर उसकी लहरों से खेलने लगा। नदी के शोर में ऐसा मालूम होता था कि नदी की चंचल और मुंहज़ोर जल परियाँ सुन्दर बच्चे को अपने साथ खेलने के लिये बुला रही हैं।

राय चरण फूल ले कर वापस आया तो देखा कि गाड़ी खाली है। उसने इधर-उधर देखा, पाँव के नीचे से पृथ्वी निकल गई। पागलों की भाँति चहुँ ओर दौड़ने लगा। वह बार-बार बच्चे का नाम लेकर पुकारता था लेकिन उत्तर में "चन्ना" की मधुर ध्वनि न आती थी।

चारों ओर अन्धेरा छा गया। बच्चे की माता को चिन्ता होने लगी। उसने चारों ओर आदमी दौड़ाए। कुछ व्यक्ति

लालटेन लिये हुए नदी के किनारे खोज करते पहुँचे। राय चरण उन्हें देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने उस से प्रश्न करने आरम्भ किये किन्तु वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में यही कहता—"मुझे कुछ मालूम नहीं।"

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की यही सम्मति थी कि छोटे बच्चे को पद्मा नदी ने अपने आँचल में छुपा लिया है किन्तु फिर भी हृदय में विभिन्न प्रकार की शंकाएं उत्पन्न हो रही थीं। एक यह कि उसी सन्ध्या को निर्वासितों (खानावदोशों) का एक समूह नगर से गया था और मां को सन्देह था कि राय चरण ने कहीं बच्चे को निर्वासितों के हाथों न बेच दिया हो। वह राय चरण को अलग ले गई और उस से विनती करते हुए कहने लगी—"राय चरण तुम मुझ से जितना रुपया चाहो ले लो, किन्तु परमात्मा के लिये मेरी दशा पर तरस खा कर मेरा बच्चा मुझ को वापस कर दो।"

परन्तु राय चरण कुछ उत्तर न दे सका, केवल माथे पर हाथ मार कर मौन हो गया।

स्वामिनी ने क्रोध और आवेश की दशा में उसको घर से बाहर निकाल दिया। अनुकूल बाबू ने पत्नी को बहुत समझाया, किन्तु माता के हृदय से शंकाएं दूर न हुईं। वह बराबर यही कहती रही कि—"मेरा बच्चा सोने के आभूषण पहने हुए था अवश्य इसने........."

राय चरण अपने गाँव वापस चला आया। उसके कोई सन्तान न थी और न ही सन्तान होने की कोई संभावना थी। किन्तु साल की समाप्ति पर उसके घर पुत्र ने जन्म लिया। परन्तु

पत्नी सूतिका गृह में ही मर गई। घर में एक विधवा बहिन थी उसने बच्चे के पालन पोषण का भार अपने ऊपर लिया।

जब बच्चा घुटनों के बल चलने लगा, वह घर वालों की नज़र बचा कर बाहर निकल जाता। राय चरण जब उसे दौड़ कर पकड़ता तो वह चंचलता से उसको मारता था। उस समय राय चरण के नेत्रों के सामने अपने उस नन्हें मालिक की सूरत फिर जाती जो पद्मा नदी की लहरों में लुप्त हो गया था।

बच्चे की ज़बान खुली तो वह बाप को 'बाबा' और भूवा को मामा इस ढंग से कहता था जिस ढंग से राय चरण का नन्हा मालिक बोलता था। राय चरण उसकी आवाज़ से चौंक उठता। उसे पूर्ण विश्वास था कि नन्हे मालिक ने उसके घर में जन्म लिया है।

इस विचार को निर्धारित करने के लिये उसके पास तीन प्रमाण थे। एक तो यह कि फलन नन्हे मालिक की मृत्यु के थोड़े ही समय पश्चात् उत्पन्न हुआ। दूसरे यह कि उस की पत्नी वृद्ध हो गई थी और सन्तान उत्पत्ति की कोई आशा न थी। तीसरे यह कि बच्चे के बोलने का ढंग और उसकी सम्पूर्ण भाव-भंगिमाएं नन्हे मालिक से मिलती-जुलती थीं।

वह हर समय बच्चे की देख भाल में संलग्न रहता। उसे भय था कि उसका नन्हा मालिक फिर कहीं गायब न हो जाए। वह बच्चे के लिये एक गाड़ी लाया और अपनी पत्नी के आभूषण बेच कर बच्चे के लिये आभूषण बनवा दिये। वह उसे गाड़ी में बिठा कर प्रतिदिन वायु सेवन के लिये बाहर ले जाता था।

धीरे-धीरे दिन बीतते गये और बच्चा सियाना हो गया। परन्तु इस लाड़-चाव में वह बहुत बिगड़ गया था। किसी से सीधे मुंह बात न करता था। गाँव के लड़के उसे लाट साहब कह कर छेड़ते थे।

जब लड़का शिक्षा योग्य हुआ तो राय चरण अपनी छोटी सी ज़मीन बेच कर कलकत्ते आ गया। उसने दौड़ धूप कर के नौकरी खोजी और फलन को स्कूल में दाखिल करवा दिया। उस को पूर्ण विश्वास था कि बड़ा हो कर फलन अवश्य जज बनेगा।

होते-होते अब फलन की आयु बारह वर्ष की हो गई। अब वह खूब लिख पढ़ सकता था। उसका स्वास्थ अच्छा और सूरत शक्ल भी अच्छी थी। उसको बनाओ श्रृंगार की बड़ी चिन्ता रहती। जब देखो दर्पन हाथ में लिये बाल बना रहा है।

वह अपव्ययी भी बहुत था। पिता की सारी आय व्यर्थ की विलास सामग्री में व्यय कर देता। राय चरण उस से प्रेम तो पिता की भाँति करता था, किन्तु प्रायः उसका वर्तावो उस लड़के से ऐसा ही था जैसे मालिक के साथ नौकर का होता है। उसका फलन भी उसे पिता न समझता था। दूसरी बात यह थी कि रायचरण स्वयं को फलन का पिता प्रकट भी न करता था।

छात्रावास के विद्यार्थी राय चरण के गंवारपन का उपहास करते औरफलन भी उन्हीं के साथ सम्मिलित हो जाता।

राय चरण ने ज़मीन बेच कर जो कुछ रुपया प्राप्त किया था वह अब लगभग सारा समाप्त हो चुका था। उसका साधारण वेतन फलन के खर्चों के लिए कम था। वह अपने पिता से जेब खर्च-और विलास की सामग्री और अच्छे-अच्छे वस्त्रों के लिये झगड़ता रहता था।

आखिर एक युक्ति राय चरण के मस्तिष्क में आई। उसने नौकरी छोड़ दी और उसके पास जो कुछ शेष रुपया था फलन को सौंप कर बोला—"फलन मैं एक आवश्यक कार्य से गाँव जा रहा हूँ, बहुत जल्द वापस आ जाऊंगा। तुम किसी बात से घबराना नहीं।"

: ३ :

राय चरण सीधा उस स्थान पर पहुँचा जहाँ अनुकूल बाबू जज के ओहदे पर लगे हुए थे। उनके और कोई दूसरी सन्तान न थी इसी कारण उनकी पत्नी हर समय चिन्तित रहती थी।

अनुकूल बाबू कचैहरी से वापस आकर कुर्सी पर बैठे हुए थे और उनकी पत्नी सन्तान उत्पत्ति के लिए एक बाज़ारू दवा बेचने वाले से जड़ी बूटियाँ खरीद रही थी।

काफ़ी दिनों के पश्चात् वह अपने वृद्ध नौकर राय चरण को देख कर आश्चर्य चकित हुई। पुरानी सेवाओं का विचार करके उसको राय चरण पर तरस आ गया और उस से पूछा—"क्या तुम फिर नौकरी करना चाहते हो ?"

रायचरण ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया—"मैं अपनी मालकिन के चरण छूना चाहता हूँ।"

अनुकूल बाबू रायचरण की आवाज़ सुनकर कमरे से निकल आये। रायचरण की शक्ल देखकर उनके कलेजे का ज़खम ताज़ा हो गया और उन्होंने मुख फेर लिया।

रायचरण ने अनुकूल बाबू को सम्बोधित करके कहा—"सरकार आपके बच्चे को पद्मा ने नहीं बल्कि मैंने चुराया था।"

अनुकूल बाबू ने आश्चर्य से कहा—"तुम यह क्या कह रहे हो, क्या मेरा बच्चा वास्तव में ज़िन्दा है ?"

उसकी पत्नी ने उछल कर कहा—"भगवान् के लिये बताओ मेरा बच्चा कहाँ है ?"

रायचरण ने कहा—"आप सन्तोष रखें, आप का बच्चा इस समय भी मेरे पास है।"

अनुकूल बाबू की पत्नी ने रायचरण से अत्याधिक विनती करते हुए कहा—"मुझे बताओ।"

रायचरण ने कहा—"मैं उसे परसों ले आऊँगा।"

: ४ :

रविवार का दिन था। जजसाहब अपने मकान में बेचैनी से रायचरण की प्रतिक्षा कर रहे थे। कभी वो कमरे में इधर उधर टहलने लगते और कभी थोड़े समय के लिये आराम कुर्सी पर बैठ जाते। आखिर दस बजे के लगभग रायचरण ने फलन का हाथ पकड़े हुए कमरे में प्रवेश किया।

अनुकूल बाबू की घर वाली फलन को देखते ही दीवानों की भाँति उस की ओर लपकी और उसे बड़े ज़ोर से गले लगा लिया। उस के नेत्रों से अश्रुओं का समुद्र उमड़ पड़ा। कभी वह उसको प्यार करती थी, कभी आश्चर्य से उसकी सूरत तकने लग जाती थी। फलन सुन्दर था और उसके कपड़े भी अच्छे थे। अनुकूल बाबू के हृदय में भी पुत्र प्रेम का आवेश उत्पन्न हुआ, किन्तु ज़रा सी देर के बाद उनके पितृ प्रेम का स्थान कानूनी भावना

ने ले लिया और उन्होंने रायचरण से पूछा—"भला इसका प्रमाण क्या है कि यह बच्चा मेरा है ?"

रायचरण ने उत्तर दिया—"इस का उत्तर मैं क्या दूँ सरकार ! इस बात का ज्ञान तो परमात्मा के सिवाय और किसी को नहीं हो सकता कि मैंने ही आपका बच्चा चुराया था।"

जब अनुकूल बाबू ने देखा कि उनकी पत्नी फलन को कलेजे से लगाये हुए है तो प्रमाण मांगना व्यर्थ है। इस के अतिरिक्त उन्हें ध्यान आया कि इस गंवार को ऐसा सुन्दर बच्चा कहाँ मिल सकता था और झूठ बोलने से क्या लाभ हो सकता है ?"

सहसा उन्हें अपने वृद्ध नौकर की बे ध्यानी याद आ गई और कानूनी मुद्रा में बोले—"रायचरण अब तुम यहाँ नहीं रह सकते।"

रायचरण ने ठंडी उसाँस भर कर कहा—"सरकार अब मैं कहाँ जाऊँ ? बूढ़ा हो गया हूँ, अब मुझे कोई नौकर भी न रखेगा। भगवान् के लिये अपने द्वार पर पड़ा रहने दीजिये।"

अनुकूल बाबू की पत्नी बोली—"रहने दो, हमारा क्या नुक-सान है ? हमारा बच्चा भी इसे देख कर प्रसन्न रहेगा।"

किन्तु अनुकूल बाबू की कानूनी नस भड़की हुई थी। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—"नहीं इस का अपराध बिल्कुल क्षमा नहीं किया जा सकता।"

रायचरण ने अनुकूल बाबू के पाँव पकड़ते हुए कहा—"सर-कार मुझे न निकालिये, मैंने आप का बच्चा नहीं चुराया था बल्कि परमात्मा ने चुराया था।"

अनुकूल बाबू को गंवार की इस बात पर और भी अधिक

क्रोध आ गया। बोले—"नहीं, अब मैं तुम पर विश्वास नहीं कर सकता। तुमने मेरे साथ कृतघ्नता की है।"

रायचरण ने फिर कहा—"सरकार मेरा कुछ अपराध नहीं।"

अनुकूल बाबू त्यौरी पर बल डाल कर कहने लगे—"तो फिर किस का अपराध है?"

रायचरण ने उत्तर दिया—"मेरे भाग्य का।"

परन्तु कोई शिक्षित व्यक्ति भाग्य का अस्तित्व स्वीकार नहीं कर सकता।

फलन को जब मालूम हुआ कि वह वास्तव में एक धनी व्यक्ति का पुत्र है तो उसे भी रायचरण की इस चेष्टा पर बहुत क्रोध आया, कि उसने इतने दिनों तक क्यों उसे कष्ट में रखा। फिर रायचरण को देख कर उसे दया भी आ गई और उसने अनुकूल बाबू से कहा—"पिता जी इस को क्षमा कर दीजिये। यदि आप इस को अपने साथ नहीं रखना चाहते तो इस की थोड़ी पेनशन निर्धारित कर दें।"

यह सुनने के बाद रायचरण अपने बेटे को अन्तिम बार देख कर अनुकूल बाबू की कोठी से निकल कर चुपचाप कहीं चला गया।

महीना समाप्त होने पर अनुकूल बाबू ने रायचरण के गाँव कुछ रुपया भेजा किन्तु मनिआर्डर वापस आ गया। गाँव में अब इस नाम का कोई व्यक्ति न था।

—:*:—

नई रोशनी

बाबू अनाथ बन्धु बी० ए० में पढ़ते थे ! परन्तु कई वर्षों से निरन्तर फ़ेल हो रहे थे। उनके सम्बन्धियों का विचार था कि वह इस वर्ष अवश्य उत्तीर्ण हो जाएंगे पर इस वर्ष उन्होंने परीक्षा देना ही योग्य न समझा।

इसी वर्ष बाबू अनाथ बन्धु का विवाह हुआ था। भगवान की कृपा से वधु सुन्दर और सदचरित्रा मिली थी। उसका नाम विन्ध्या वासनी था किन्तु अनाथ बाबू को इस हिन्दोस्तानी नाम से घृणा थी। पत्नी को भी वह विशेषताओं और सुन्दरता में अपने योग्य न समझते थे।

परन्तु विन्ध्या वासनी के हृदय में हर्ष की सीमा न थी। दूसरे पुरुषों की अपेक्षा वह अपने पति को सर्वोत्तम समझती थी। ऐसा मालूम होता था कि किसी धर्म में आस्था रखने वाले श्रद्धालू व्यक्ति की भाँति वह अपने हृदय के सिंहासन पर स्वामी की मूर्ति सजा कर सर्वदा उसी की पूजा किया करती थी।

इधर अनाथ बन्धु की सुनिये ! वह न जाने क्यों हर समय उससे रुष्ट रहते और तीखे कड़ुवे शब्दों से उस के प्रेम भरे मन को हर संभव ढंग पर जख्मी करते रहते थे। अपनी मित्र मंडली में भी वह उस बेचारी को घृणा के साथ स्मरण करते थे।

जिन दिनों अनाथ बन्धु कालेज में पढ़ते थे उनका निवास ससुराल में ही था। परीक्षा का समय समीप आया किन्तु उन्होंने परीक्षा दिये बगैर ही कालेज छोड़ दिया। इस घटना पर अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा विन्ध्या वासनी को अधिक दुःख हुआ। रात के समय उसने विनम्रता के साथ कहना आरम्भ किया—"प्राण नाथ! आपने पढ़ना क्यों छोड़ दिया। थोड़े दिनों का कष्ट सह लेना कोई कठिन बात न थी। पढ़ना लिखना कोई बुरी वस्तु तो नहीं है।"

पत्नी की इतनी बात सुनकर अनाथ बन्धु के मिजाज का पारा १२० डिग्री तक पहुँच गया। बिगड़ कर कहने लगे—"पढ़ने लिखने से क्या मनुष्य के चार हाथ पाँव हो जाते हैं? जो व्यक्ति पढ़ लिखकर अपना स्वास्थ खो बैठते हैं उन की दशा अन्त में बहुत बुरी होती है।"

पति का उत्तर सुनकर विन्ध्या वासनी ने इस प्रकार स्वयं को साँत्वना दी कि जो मनुष्य गधे या बैल की भाँति कठिन परिश्रम करके किसी न किसी प्रकार सफल भी हो गये, परन्तु कुछ न बना सके तो फिर उनका सफल होना न होना बराबर है।

इसके दूसरे दिन पड़ौस में रहने वाली सहेली कमला विन्ध्या वासनी को एक समाचार सुनाने आई। उसने कहा—"आज हमारे भाई बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। उनको बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ा किन्तु भगवान की कृपा से परिश्रम सफल हुआ।"

कमला की बात सुनकर विन्ध्या ने समझा कि मेरे पति की हंसी उड़ाने को कह रही है। वह सहन कर गई और दबी आवाज़

से कहने लगी—"बहिन मनुष्य के लिये बी० ए० पास कर लेना कोई कठिन बात नहीं, परन्तु बी० ए० पास कर लेने से होता क्या है ? विदेशों में लोग बी० ए० और एम० ए० पास व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।"

: २ :

विन्ध्या वासनी ने जो बातें कमला से कही थीं वह सब उसने अपने पति से सुनी थीं, नहीं तो उस बेचारी को विलायत का हाल क्या मालूम था। कमला आई तो थी हर्ष का समाचार सुनानें किन्तु अपनी प्रिय सहेली के मुख से ऐसे शब्द सुनकर उसको बहुत दुःख हुआ। परन्तु समझदार लड़की थी। उसने अपने हृदयगत भाव प्रकट न होने दिये। उल्टा विनम्र हो कर बोली—" बहिन मेरा भाई तो विलायत गया ही नहीं और न मेरा विवाह ऐसे व्यक्ति से हुआ है जो विलायत होकर आया हो, इस लिये विलायत का हाल मुझे कैसे मालूम हो सकता है।"

इतना कह कर कमला अपने घर चली गई।

किन्तु कमला का विनम्र स्वर होते हुए भी यह अत्यन्त कटु बातें विन्ध्या को बहुत बुरी मालूम हुईं। वह उनका उत्तर तो क्या देती, हाँ एकान्त में बैठ कर रोने लगी।

इसके कुछ दिनों पश्चात् एक अजीब घटना घटित हुई जो विशेषतः वर्णन करने योग्य है। कलकत्ते से एक धनवान व्यक्ति जो विन्ध्या के पिता राज कुमार के मित्र थे, अपने कुटुम्ब सहित आये और राज कुमार बाबू के घर अतिथि बन कर रहने लगे। चूंकि उनके साथ कई आदमी और नौकर-चाकर थे इसलिये

जगह बनाने को राज कुमार बाबू ने अनाथ बन्धु वाला कमरा भी उनको सौंप दिया और अनाथ बन्धु के लिये एक और छोटा सा कमरा साफ करा दिया। यह बात अनाथ बन्धु को बहुत बुरी लगी। तीव्र क्रोध की दशा में वह विन्ध्या वासनी के पास गये और ससुराल की बुराई करने लगे, साथ ही साथ उस निरापराधनी को भी दो चार बातें सुनाईं।

विन्ध्या बहुत व्याकुल और चिन्तित हुई, किन्तु वह मूर्ख न थी। उसके लिये अपने पिता को दोषी ठहराना योग्य न था किन्तु पति को कह सुन कर ठंडा किया। इसके बाद एक दिन अवसर पाकर उसने अपने पति से कहा कि—"अब यहाँ रहना ठीक नहीं। आप मुझे अपने घर ले चलिये। इस स्थान पर रहने में सम्मान नहीं है।"

अनाथ बन्धु परले सिरे के घमंडी व्यक्ति थे। उन में दूर दर्शिता की भावना बहुत कम थी। अपने घर पर कष्ट से रहने की अपेक्षा उन्होंने ससुराल का अपमान सहना अच्छा समझा। इस लिये आना कानी करने लगे। किन्तु विन्ध्या वासनी ने न माना और कहने लगी—"यदि आप जाना नहीं चाहते तो मुझ अकेली को भेज दीजिये। कम से कम मैं ऐसा अपमान सहन नहीं कर सकती ?"

इस पर अनाथ बन्धु विवश घर जाने को तैयार हो गये।

: ३ :

चलते समय माता-पिता ने विन्ध्या से कुछ दिनों और रहने के लिये कहा किन्तु विन्ध्या ने कुछ उत्तर न दिया। यह देख

कर माता-पिता के हृदय में कुछ शंखा हुई। उन्होंने कहा—"बेटी विन्ध्या! यदि हम से कोई ऐसी वैसी बात हुई हो तो उसे भुला देना।"

बेटी ने नम्रता पूर्वक पिता के मुंह की ओर देखा। फिर कहने लगी—"पिता जी हम आप के कर्जे से कभी उऋण नहीं हो सकते। हमारे दिन यहाँ बड़े सुख से बीते और......।

कहते-कहते विन्ध्या का गला भर आया और आँखों से आँसू बहने लगे। इसके पश्चात् उसने हाथ जोड़ कर माता-पिता से विदा चाही और सब को रोता हुआ छोड़ कर पति के साथ चल दी।

कलकत्ते के धनवान् और ग्रामीण जमीन्दारों में बहुत बड़ा अन्तर है। जो व्यक्ति सर्वदा नगर में रहा हो उसे गाँव में रहना अच्छा नहीं लगता। किन्तु विन्ध्या ने पहली बार नगर से बाहर कदम रखने पर भी किसी प्रकार का कष्ट प्रकट न किया, बल्कि ससुराल में हर प्रकार से प्रसन्न रहने लगी। इतना ही नहीं, उसने अपनी नारी सुलभ चतुरता से बहुत शीघ्र अपनी सास का मन मोह लिया। ग्रामीण स्त्रियां उसके गुणों को देख कर प्रसन्न होती थीं, परन्तु सब कुछ होते हुए भी विन्ध्या प्रसन्न न थी। अनाथ बन्धु के तीन भाई और थे। दो छोटे एक बड़ा। बड़े भाई परदेश में पचास रुपये के नौकर थे। इस से अनाथ बन्धु के घर बार का खर्च चलता था। छोटे भाई अभी स्कूल में पढ़ते थे।

बड़े भाई की पत्नी श्यामा को इस बात का घमंड था कि उसके पति की कमाई से सब को रोटी मिलती है, इस लिये वह घर के काम काज को हाथ तक न लगाती थी।

इसके कुछ दिनों पश्चात् बड़े भाई छुटी लेकर घर आये। रात को श्यामा ने पति से भाई और भरजाई श्यामा की शिकायत की। पहले तो पति ने उसकी बातों को हंसी में उड़ा दिया, परन्तु जब उसने कई बार कहा तो उन्होंने अनाथ बन्धु को बुलवाया और कहने लगे—"भाई पचास रुपये में हम सब का गृहस्थ नहीं चल सकता, अब तुम को भी नौकरी की चिन्ता करनी चाहिये।"

यह शब्द उसने प्रेम के कोमल स्वर में कहे थे परन्तु अनाथ बन्धु बिगड़ कर बोले—"भाई साहब! दो मुट्ठी भर अन्न के लिए आप इतने रुष्ट होते हैं, नौकरी तालाश करना कोई बड़ी बात नहीं, किन्तु हम से किसी की गुलामी नहीं हो सकती।" इतना कह कर वह भाई के पास से चले गये।

इन्हीं दिनों गाँव के स्कूल में थर्ड मास्टर का स्थान खाली हुआ था। अनाथ बन्धु की पत्नी और उनके बड़े भाई ने उस स्थान पर उन से काम करने के लिये बहुत कहा, किन्तु उन्होंने ऐसी तुच्छ नौकरी स्वीकार न की। अब तो अनाथ बन्धु को केवल विलायत जाने की धुन समाई हुई थी। एक दिन अपनी पत्नी से कहने लगे—"देखो आजकल विलायत गये बिना मनुष्य का सम्मान नहीं होता और न ही अच्छी नौकरी मिल सकती है। इस लिये हमारा विलायत जाना आवश्यक है तुम अपने पिता से कह कर कुछ रुपया मंगा दो तो हम चले जाएं।"

विलायत जाने की बात सुनकर ही विन्ध्या को बहुत दुख हुआ था, पिता के घर से रुपया मंगाने की बात से तो बेचारी की जान ही निकल गई।

: ४ :

दुर्गा पूजा के दिन समीप आए तो विन्ध्या के पिता ने बेटी और दामाद को बुलाने के लिये आदमी भेजा। विन्ध्या खुशी-खुशी मैके आई। मां ने बेटी और दामाद को रहने के लिये अपना कमरा दे दिया। दुर्गा पूजा की रात को यह सोचकर कि पति न जाने कब तक वापस आएं, विन्ध्या प्रतिज्ञा करते-करते सो गई।

सुबह उठी तो उसने अनाथ बन्धु को कमरे में न पाया। उठकर देखा तो माँ का लोहे का सन्दूक खुला पड़ा था, सारी चीज़ें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं और पिता का छोटा कैस बाक्स जो उसके अन्दर रखा था, गायब था।

विन्ध्या का हृदय धड़कने लगा। उसने सोचा कि जिस बदमाश ने चोरी की है उसी के हाथों पति को भी हानि पहुँची है।

परन्तु थोड़ी देर के बाद उसकी दृष्टि काग़ज के टुकड़े पर जा पड़ी। वह उसे उठाने लगी तो देखा कि पास ही कुँजियों का एक गुच्छा पड़ा है। पत्र पढ़ने से मालूम हुआ कि उसका पति आज ही रात प्रातः जहाज़ पर सवार होकर विलायत चला गया है।

पत्र पढ़ते ही विन्ध्या की आँखों के सामने अन्धेरा छा गया।

वह दुख के आघात से ज़मीन पर बैठ गई और आँचल से मुंह ढाँप कर रोने लगी।

आज सारे बंगाल में खुशियाँ मनाई जा रही थीं किन्तु विन्ध्या के कमरे का दरवाज़ा अब तक बन्द था। इस का कारण

जानने के लिये विन्ध्या की सहेली कमला ने दरवाजा खटखटाना आरम्भ किया, किन्तु अन्दर से कोई उत्तर न मिला तो वह दौड़ कर विन्ध्या की माँ को बुला लाई। माँ ने बाहर खड़ी होकर आवाज़ दी—"विन्ध्या ! अन्दर क्या कर रही है ? दरवाजा तो खोल बेटी।"

मां की आवाज़ पहचान कर विन्ध्या ने झट आँसुओं को पूंछ डाला और कहा—"माता जी पिता जी को बुला लो।"

इस से मां बहुत घबराई, अतः उसने तुरन्त पति को बुलवाया। राज कुमार बाबू के आने पर विन्ध्या ने दरवाज़ा खोल दिया और माता-पिता को अन्दर बुलाकर फिर दरवाजा बन्द कर लिया।

राज कुमार ने घबरा कर पूछा—"विन्ध्या क्या बात है ? तू रो क्यों रही है ?"

यह सुनते ही विन्ध्या पिता के चरणों में गिर पड़ी और कहने लगी—"पिता जी मेरी दशा पर दया करो। मैंने आप का रुपया चुराया है।"

राज कुमार आश्चर्य चकित रह गये। उसी हालत में विन्ध्या ने फिर हाथ जोड़ कर कहा—"पिता जी इस अभागिन का अपराध क्षमा कीजिये। स्वामी को विलायत भेजने के लिये मैंने यह नीच कर्म किया है।"

अब राज कुमार को बहुत क्रोध आया। डाँट कर बोले—"दुष्ट लड़की यदि तुझ को रुपये की आवश्यकता थी तो हम से क्यों न कहा ?"

विन्ध्या ने डरते-डरते उत्तर दिया—"पिता जी आप उनको विलायत जाने के लिये रुपया न देते।"

ध्यान देने योग्य बात है कि जिस विन्ध्या ने कभी माता-पिता से रुपये पैसे के लिये विनती तक न की थी आज वह पति के पाप छुपाने के लिये चोरी का इलज़ाम अपने ऊपर ले रही है।

विन्ध्या वासनी पर चारों ओर से घृणा की बौछारें होने लगीं। बेचारी सब कुछ सुनती रही, किन्तु मौन थी।

तीव्र क्रोधावेश की दशा में राज कुमार ने बेटी को ससुराल भेज दिया।

: ५ :

इसके बाद समय बीतता गया, किन्तु अनाथ बन्धु ने विन्ध्या को कोई पत्र न लिखा और न अपनी माँ की ही कोई सुध-बुध ली। पर जब आखिर कार सब रुपये जो उनके पास थे खर्च हो गये तो बहुत ही घबराए और बिन्ध्या के पास एक तार भेज कर तकाज़ा किया। विन्ध्या ने तार पाते ही अपने बहुमूल्य आभूषण बेच डाले और उनसे जो मिला वह अनाथ बाबू को भेज दिया। अब क्या था ? जब कभी रुपयों की आवश्यकता होती वह झट विन्ध्या को लिख देते और विन्ध्या जिस तरह बन पड़ता अपने रहे-सहे आभूषण बेच कर उनकी आवश्यकताओं को पूरा करती रहती। यहाँ तक कि बेचारी गरीब के पास काँच की दो चूड़ियों के सिवाय कुछ भी शेष न रहा।

अब अभागी विन्ध्या के लिए संसार में कोई सुख शेष न रहा था। सम्भव था वह किसी दिन दुखी हालत में आत्मा घात कर लेती। किन्तु वह फिर सोचती कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, अनाथ बन्धु मेरे स्वामी हैं। इस लिए कष्ट सहते हुए भी वह जीवन के

दुख उठाने पर विवश थी। अनाथ बन्धु के लिये वह जीवित रह कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर रही थी किन्तु अब चूंकि उसके लिये विरह का दुख सहना कठिन हो गया था इस लिये विवश होकर उसने पति के नाम वापस आने के लिये पत्र लिखा।

इसके थोड़े ही दिनों बाद अनाथ बन्धु बैरिस्टरी पास करके साहब बहादुर बने हुए वापस लौट आये परन्तु देहात में बैरि-स्टर साहब का निर्वाह होना कठिन था इस लिये पास ही एक कस्बे में होटल का आश्रय लेना पड़ा। विलायत रहकर अनाथ बन्धु के रहन-सहन में बहुत अन्तर आ गया था। वह ग्रामीणों से घृणा करते थे। उनके खान-पान और रहन-सहन के तरीकों से यह भी मालूम न होता था कि वह अंग्रेज हैं या हिन्दोस्तानी।

विन्ध्या यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई कि स्वामी बैरिस्टर होकर आये हैं, किन्तु माँ उसकी बिगड़ी हुई आदतों को देख कर बहुत व्याकुल हुई। अन्त में उसने भी यह सोच कर दिल को समझा लिया कि आज कल का ज़माना ही ऐसा है इस में अनाथ बन्धु का क्या दोष ?

इस के कुछ समय पश्चात् एक बहुत ही दर्द से भरी हुई घटना घटित हुई। बाबू राज कुमार अपने कुटुम्ब सहित नाव पर सवार होकर कहीं जा रहे थे कि सहसा नौका जहाज़ से टकरा कर गंगा में डूब गई। राज कुमार तो किसी प्रकार बच गये किन्तु उनकी पत्नी और पुत्र का कहीं पता न लगा।

अब उनके कुटुम्ब में विन्ध्या के सिवाय कोई दूसरा शेष न रहा था। इस दुर्घटना के पश्चात् एक दिन राज कुमार बाबू विकल अवस्था में अनाथ बन्धु से मिलने आये। दोनों में कुछ देर तक बात चीत होती रही, अन्त में राज कुमार बाबू ने कहा—

"जो कुछ होना था सो तो हुआ, अब प्रायश्चित् करके अपनी जाति में सम्मिलित हो जाना चाहिये। क्योंकि तुम्हारे सिवाय अब दुनिया में हमारा कोई नहीं, बेटा या दामाद जो कुछ भी हो अब तुम हो।

: ६ :

अनाथ बन्धु ने प्रायश्चित करना स्वीकार कर लिया। पंडितों से सलाह ली गई तो उन्होंने कहा—"यदि इन्होंने विलायत में रह कर मांस नहीं खाया है तो इन की शुद्धि वेद मन्त्रों द्वारा की जा सकती है।"

यह समाचार सुनकर विन्ध्या हर्ष से फूली न समाई और अपना सारा दुःख भूल गई। आखिर एक दिन प्रायश्चित की रस्म अदा करने के लिये रखा गया।

बड़े आनन्द का समय था, चहुँ ओर वेद मन्त्रों की गूंज सुनाई देती थी। प्रायश्चित के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और इसके पारणाम स्वरूप बाबू अनाथ बन्धु नये सिरे से बिरादरी में सम्मिलित कर लिये गये।

परन्तु ठीक उस समय जब राजकुमार बाबू ब्राह्मणों को दक्षिणा दे रहे थे, एक नौकर ने कार्ड लिये हुए घर में प्रवेश किया और राज कुमार से कहने लगा—" बाबू जी! एक मेम आई हैं।"

मेम का नाम सुनते ही राज कुमार बाबू चकराए, कार्ड पढ़ा। उस पर लिखा था—"मिसेज़ अनाथ बन्धु सरकार।"

इस से पहिले कि राज कुमार बाबू हाँ या ना का कुछ उत्तर देते एक युवती, गोरे रंग की यूरोपियन स्त्री खट-खट करती अन्दर आ उपस्थित हुई।

पंडितों ने जो उसको देखा, तो दक्षिणा लेनी भूल गये। घबरा कर जिधर जिसके सींग समाए निकल गये। इधर मेम साहिबा ने जब अनाथ बन्धु को न देखा तो बहुत विकल हुईं और उनका नाम ले लेकर आवाजें देने लगीं।

इतने में अनाथ बन्धु कमरे से बाहर निकले। उन्हें देखते ही मेम साहिबा "माई डीयर" कह कर झट उन से लिपट गईं।

यह दशा देख कर घर के पुरोहित भी अपना बोरिया बन्धना संभाल कर विदा हो गये। उन्होंने पीछे मुड़ कर भी न देखा।

—:*:—

मातृ भूमि से दूर

मेरी लड़की मुन्नी पाँच वर्ष की छोटी आयु में ही इतनी बातें करती थी कि शायद ही वह एक मिनिट के लिए चुप रहती हो। उसकी मां तो उस से बहुत विकल रहा करती थी, किन्तु मैं उसकी भोली बातों से प्रसन्न होता था। मैंने जान लिया था कि मौन रहना उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। मेरी और मुन्नी की बातचीत बच्चों की भावनाओं से प्रेम करने वालों के लिये बहुत ही मनोरंजक होती थीं।

एक दिन जब कि मैं अपने उपन्यास को पूरा करने में लीन था, सहसा मुन्नी मेरे कमरे में प्रविष्ट हुई और बाल सुलभ चंचलता के साथ अपना हाथ मेरे हाथ पर रख कर कहने लगी—"पिता जी ! मुझे यह तो बता दीजिये कि राम दयाल वर्मा को अग्गू गवा क्यों कहता है ? वह कुछ जानता भी है या यूंही।"

अभी मैं इसका उत्तर देना ही चाहता था कि उसने तुरन्त दूसरा प्रश्न कर दिया—"और क्यों पिता जी ! क्या यह सत्य है भोला कहता था कि बादल भी एक हाथी होता है। जब वह अपनी सूंड से पानी फैंकता है तो पानी बरसता है।"

मैंने इसका उत्तर देने का इरादा किया ही था कि उसने

तीसरा प्रश्न कर डाला—"अच्छा यह तो बताइये कि अम्मा आपकी कौन हैं ?"

मेरा कमरा सड़क के किनारे था। मुन्नी मेरे पास बैठी आहिस्ता-आहिस्ता बाजा बजा रही थी। इस समय मैं अपने उपन्यास के उस भाग के लिखने में लीन था जिसमें कहानी का नायक प्रताप सिंह कंचटला अर्थात् नायिका को पकड़ कर भागने वाला था कि सहसा मुन्नी अपना खेल छोड़ कर "कावली वाला, कावली वाला" कहती हुई दरवाज़े की ओर दौड़ी। मैंने देखा तो वास्तव में एक कावली मैले कपड़े पहने हुए, कन्धे पर एक बड़ा सा थैला रखे और हाथों में अंगूर के बक्स लिये सड़क पर जा रहा था। मुन्नी उसका कद और लम्बा चौड़ा शरीर देख कुछ ऐसी घबराई कि उसकी उस हालत का सही नकशा खेंचना असम्भव है। इतने में वह व्यक्ति उस ओर पलटा और लड़की को स्नेह-मयी दृष्टि से देखने लगा। मुन्नी उसको अपनी ओर आता हुआ देख कर वहाँ से भागी और जाकर अपनी मां से लिपट गई।

उसकी मां काबली को देख कर समझी कि ज़रूर उसके थैले में मुन्नी की भाँति छोटे-छोटे सुन्दर बच्चे बंद हैं। इतने में काबली दरवाज़े में से होकर अन्दर आया और मुझ को सलाम करके मुस्कुराता हुआ बैठ गया। मैंने उससे कुछ चीजें मोल लीं और इसके बाद मीर अब्दुल रहमान रूसियों, अंग्रेज़ों और सरहदी लोगों के विषय में बातें करने लगा। अन्त में जब वह जाने के लिये उठा तो उसने पूछा—"आप की वह लड़की कहाँ है ?"

मैंने मुन्नी का भय दूर करने के विचार से उसको बुलाया तो वह आई और मेरी कुर्सी के पास खड़ी होकर कावली और

उसके थैले को बड़े गौर से देखने लगी। कावली ने मुन्नी की जिज्ञासु दृष्टि से उसके धड़कते हुए हृदय का हाल मालूम कर लिया। खैर उसने उसे कुछ किश्मिश और अखरोट दिये और चला गया।

एक दिन प्रातःकाल ही मैं कहीं जाने के लिये तैयार था कि मैंने मुन्नी को दरवाज़े पर कावली के साथ निस्संकोच भाव से खेलते हुए देखा। उसकी साड़ी का एक कोना किश्मिश और बादाम से भरा हुआ था। मैंने कहा—"तुमने ये चीज़ें व्यर्थ में इसे दीं, भविष्य में यह न होना चाहिये।" और यह कह कर मैंने एक अठन्नी पेश की। जिसे उसने बिना किसी संकोच के मुझ से लेकर मुन्नी को दे दिया। मुन्नी की मां अठन्नी देखते ही पूछने लगी—"यह तुमने अठन्नी कहाँ से पाई?" मुन्नी ने अथाह हर्ष के साथ कहा—"कावली वाले ने दी है।" यह सुनकर वह रुष्ट हुई और उसको मारने के लिये उठी, किन्तु मैंने तुरन्त पास जाकर मामला रफ़ा दफ़ा कर दिया।

धीरे-धीरे मुन्नी और कावली परस्पर बहुत ही निस्संकोच हो गये थे। कावली ने उसके भय को बादाम और अखरोट देकर खरीद लिया था। वो दोनों आपस में खूब खेला करते थे। जब कावली आता तो मुन्नी उसकी सूरत देख कर बे इख्त्यार हंसने लगती और भोलेपन से पूछती—"कावली तुम्हारे इस थैले में क्या है?"

इसके उत्तर में कावली अपने विशेष स्वर में कहता—"बच्चा तुम नहीं जानते, इसमें एक हाथी बन्द है।"

एक बड़ी उम्र वाले व्यक्ति से उस भोली और कम आयु वाली लड़की की इसी प्रकार की बातें और ऐसे ही भोले प्रश्न बहुत ही मनोरंजक मालूम होते थे।

एक बार काबली ने पूछा—"मुन्नी तुम अपने ससुराल कब जाओगी।"

भोली मुन्नी उसके प्रश्न को न समझ सकी। वह सोच रही थी कि ससुराल के क्या अर्थ होते हैं। इसलिये उसने यही प्रश्न उस से पूछा—"क्या तुम वहाँ जाओगे।"

उस काबली ने किसी ख़याली शत्रु को मारने के लिये सख्ती से घूंसा उठाया और कठोर स्वर में बोला—"हम उस ससुरे को मार डालेगा।"

उसकी इस भाव-भंगिमा पर मुन्नी बहुत हंसी। यहाँ तक कि उसके पेट में बल पड़ गये। काबली भी उसके साथ हंसता रहा।

: २ :

बागों में हेमन्त ऋतु आने लगी थी। प्रातः का समय था और यद्यपि मैं उस समय कलकत्ते ही के एक भाग में रह रहा था किन्तु अपनी कल्पना शक्ति के बल पर मैं सारे संसार में सैर कर रहा था। दूसरे देशों का नाम सुनकर मेरी इच्छाओं में ज्वार भाटा आ जाता था और किसी नये व्यक्ति को सड़क पर चलता हुआ देख कर उसके देश की कल्पना में ऐसा डूब जाता था कि वहाँ के पहाड़ों के आकर्षक दृश्य, तलहटियों और उपत्यकाओं की हरियाली और घने जंगलों में रहने वाले निर्धन ग्रामीनों के छोटे-छोटे झोंपड़े मेरी आँखों में फिरने लगते और मैं उन मोहक और प्रभावशाली दृश्यों में विचरण करने लगता। यदि किसी समय मेरे पास काबली बैठा हुआ होता तो काबुल के पहाड़ों की ऊंची चोटियों और घाटियों के उतार-चढ़ाव मेरे सामने फिर जाते

और ऐसा मालूम होता कि मैं अपनी आँखों से लदे हुए ऊंटों की लम्बी पंक्ति और सौदागरों की ऊंची-ऊंची पगड़ियाँ देख रहा हूँ। प्रायः मेरी यह तल्लीनता उस समय दूर होती जब मुन्नी की माँ मुझ से कहती, देखो उस आदमी से सावधान रहना।

मुन्नी की माँ कमज़ोर हृदय की स्त्री थी। यदि वह सड़क पर ज़रा सा शोर सुनती तो यह समझ कर दौड़ जाती कि सम्भवतः डाकू आ गये या शराबी लड़ रहे हैं। समझदार और अक़्लमन्द होते हुए भी वह काल्पनिक भयानक घटनाओं की चिन्ता में रहा करती और काबली से तो वह बुरी तरह भयभीत रहती थी। किसी समय तो उसको यह सन्देह इतना गहरा हो जाता कि मुझे बेइख्त्यार हंसी आ जाती। किन्तु वह मुझे हंसता देखकर झुंझला जाती और पूछती—"क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि काबली बच्चों को चुरा ले जाते हैं और क्या दास-प्रथा अब तक काबुल में प्रचलित नहीं है? सम्भव है वह लम्बे डील डौल का आदमी अपने आने-जाने में किसी दिन मेरी बच्ची को भी चुरा ले जाए।"

मैं उसके प्रश्नों से तंग आकर कहता—"मुन्नी की मां! तुम्हारा यह विचार वैसे किसी सीमा तक ठीक है कि काबली ऐसी चेष्टा करते हैं, तो भी उस व्यक्ति से ऐसा होना असम्भव है।"

किन्तु मेरी इन बातों से उसको सांत्वना न होती। मैंने भी इस बीच में उसके आने जाने पर विशेष ध्यान न दिया था। वह उसी प्रकार निरन्तर आता रहा। उसका स्वभाव था कि हर साल के आरम्भ में काबुल चला जाता और कुछ दिनों के बाद कर्ज़दारों से रुपया वसूल करने के लिये फिर वापस आ जाता।

: ३ :

आठ बज चुके थे, सर्दी अभी तेज़ थी, लोग अपने-अपने कामों पर जा रहे थे। सूर्य की सुनेहरी किरणें काँपती हुई मेरे कमरे में प्रवेश कर रही थीं और मैं अपनी कापियों के शुद्ध करने में लीन था, कि सड़क पर शोर गुल की आवाज़ सुनाई दी। थोड़ी देर के बाद मैंने देखा कि काबली को पुलिस वाले पकड़े लिये जा रहे हैं। मैं दौड़ कर मनुष्यों के उस समूह के पास गया और लोगों से पूछा तो मालूम हुआ कि काबली का कुछ रुपया किसी पर बाकी था, उसने देने से इन्कार किया आपस में लड़ाई हुई और काबली ने गुस्से में आकर उसे चाकू मार दिया।

इस समय काबली का मुख क्रोध से लाल था और वह पुलिस के आदमियों को बुरा भला कह रहा था।

रहमान के शरीर में (क्योंकि यह ही उस काबली का नाम था) मेरी आवाज़ सुनकर एक विद्युत प्रभा सी दौड़ गई और उसका मुख प्रसन्नता से चमकने लगा। इस समय उसके पास थैला न था, जिसे देखकर मुन्नी हाथी के विषय में उस से बात चीत करती। इसलिये वह पहली बात याद करके पूछने लगी—"क्या तुम अपनी ससुराल जा रहे हो ?"

काबली ने हंस कर उत्तर दिया—"हाँ प्यारी लड़की मैं वहीं जा रहा हूँ।" इतना कहने के बाद उसका मुख क्रोधाग्नि से चमक उठा। उसने हथकड़ी पहने हुए हाथों को हिला कर कहा—"खेद है यदि इस समय मेरे हाथ स्वतन्त्र होते तो उन बदमाशों ससुरों को काफ़ी दंड देता, किन्तु विवश हूँ।"

और ऐसा मालूम होता कि मैं अपनी आँखों से लदे हुए ऊंटों की लम्बी पंक्ति और सौदागरों की ऊंची-ऊंची पगड़ियाँ देख रहा हूँ। प्रायः मेरी यह तल्लीनता उस समय दूर होती जब मुन्नी की माँ मुझ से कहती, देखो उस आदमी से सावधान रहना।

मुन्नी की माँ कमज़ोर हृदय की स्त्री थी। यदि वह सड़क पर ज़रा सा शोर सुनती तो यह समझ कर दौड़ जाती कि सम्भवतः डाकू आ गये या शराबी लड़ रहे हैं। समझदार और अक्लमन्द होते हुए भी वह काल्पनिक भयानक घटनाओं की चिन्ता में रहा करती और काबली से तो वह बुरी तरह भयभीत रहती थी। किसी समय तो उसको यह सन्देह इतना गहरा हो जाता कि मुझे बेइख्त्यार हंसी आ जाती। किन्तु वह मुझे हंसता देखकर झुंझला जाती और पूछती—"क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि काबली बच्चों को चुरा ले जाते हैं और क्या दास-प्रथा अब तक काबुल में प्रचलित नहीं है? सम्भव है वह लम्बे डील डौल का आदमी अपने आने-जाने में किसी दिन मेरी बच्ची को भी चुरा ले जाए।"

मैं उसके प्रश्नों से तंग आकर कहता—"मुन्नी की मां! तुम्हारा यह विचार वैसे किसी सीमा तक ठीक है कि काबली ऐसी चेष्टा करते हैं, तो भी उस व्यक्ति से ऐसा होना असम्भव है।"

किन्तु मेरी इन बातों से उसको साँत्वना न होती। मैंने भी इस बीच में उसके आने जाने पर विशेष ध्यान न दिया था। वह उसी प्रकार निरन्तर आता रहा। उसका स्वभाव था कि हर साल के आरम्भ में काबुल चला जाता और कुछ दिनों के बाद कर्ज़दारों से रुपया वसूल करने के लिये फिर वापस आ जाता।

: ३ :

आठ बज चुके थे, सर्दी अभी तेज़ थी, लोग अपने-अपने कामों पर जा रहे थे। सूर्य की सुनेहरी किरणें काँपती हुई मेरे कमरे में प्रवेश कर रही थीं और मैं अपनी कापियों के शुद्ध करने में लीन था, कि सड़क पर शोर गुल की आवाज़ सुनाई दी। थोड़ी देर के बाद मैंने देखा कि काबली को पुलिस वाले पकड़े लिये जा रहे हैं। मैं दौड़ कर मनुष्यों के उस समूह के पास गया और लोगों से पूछा तो मालूम हुआ कि काबली का कुछ रुपया किसी पर बाकी था, उसने देने से इन्कार किया आपस में लड़ाई हुई और काबली ने गुस्से में आकर उसे चाक़ू मार दिया।

इस समय काबली का मुख क्रोध से लाल था और वह पुलिस के आदमियों को बुरा भला कह रहा था।

रहमान के शरीर में (क्योंकि यह ही उस काबली का नाम था) मेरी आवाज़ सुनकर एक विद्युत प्रभा सी दौड़ गई और उसका मुख प्रसन्नता से चमकने लगा। इस समय उसके पास थैला न था, जिसे देखकर मुन्नी हाथी के विषय में उस से बात चीत करती। इसलिये वह पहली बात याद करके पूछने लगी—"क्या तुम अपनी ससुराल जा रहे हो ?"

काबली ने हंस कर उत्तर दिया—"हाँ प्यारी लड़की मैं वहीं जा रहा हूँ।" इतना कहने के बाद उसका मुख क्रोधाग्नि से चमक उठा। उसने हथकड़ी पहने हुए हाथों को हिला कर कहा—"खेद है यदि इस समय मेरे हाथ स्वतन्त्र होते तो उन बदमाशों ससुरों को काफ़ी दंड देता, किन्तु विवश हूँ।"

पुलिस वाले काबली को न्यायालय ले गये, जहाँ उसका मुकद्मा पेश हुआ और प्राण घातक आक्रमण के अपराध में कुछ वर्ष के लिये बन्दी बना दिया गया।

: ४ :

दिन बीतते गये, ऋतु बदलती गई, फसलें समाप्त होती रहीं। अब काबली किसी को भी स्मरण न था। मस्तिष्क ने उसे बिल्कुल बिस्मृत कर दिया था। मैं उसी लबे सड़क कमरे में अपने कामों में तल्लीन रहा और कभी उस गरीब बन्दी का विचार तक न आया जो बन्दी गृह की तंग और अंधेरी कोठरी में अपनी यातना के दिन बिता रहा था। यह आरोप साहब मुझी पर नहीं, बल्कि मुन्नी को भी अपना वह पुराना और प्रिय मित्र कभी याद न आया। अब मुन्नी में जवानी की उमंगें थीं और वह प्राय: अपनी समवयस्क सहेलियों में रहा करती थी।

रात दिन सुबह और शाम में परिवर्तित होते रहे, महीने आये और चले गये, वर्ष आये और समाप्त हो गये। फिर वही शरद ऋतु थी। मुन्नी के विवाह का सब सामान पूरा हो चुका था। पूजा की छुट्टियों में विवाह का दिन निश्चित हो गया। घर वालों से बिछुड़ने का वह समय समीप आता जाता था जिस में माता पिता के हृदयों का संतोष सर्वदा के लिये उन से छिन जाने वाला था।

प्रातःकाल का समय था और सूर्य की सुनेहरी किरणें कलकत्ते के बन्द मकानों पर पड़ रही थीं। पानी बरस कर खुल चुका था। वायु बहुत शीतल बह रही थी। आज मुन्नी के विवाह का

दिन था। प्रातःकाल से ही बाजे बजने लगे, जिनकी आवाज़ों के साथ मेरा हृदय विकल हो जाता था। विरह के कठिन क्षणों को भैरवी का कारुणिक राग और भी अधिक करुणामय बना रहा था। जैसे-जैसे प्रभात समाप्त होता गया अतिथियों की संख्या बढ़ती गई। शामियाने लगाए जा रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति बहुत ही संलग्नता के साथ कमरों और दालानों के सजाने में लगा हुआ था और मैं उसी कमरे में अपने उपन्यास के कथानक को देख रहा था कि सहसा एक व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया और सलाम करके मौन खड़ा हो गया। कुछ देर तक तो मैं उसे पहचान न सका किन्तु जैसे ही वह मुस्कुराया, मैंने तुरन्त जान लिया कि रहमान है। अब न उसके पास वह थैला था, न लम्बे-लम्बे बाल थे और न पहले सी शक्ति और निर्भयता।

मैंने उससे पूछा—"रहमान कब आये?"

उसने रुकते हुए कहा—"मैं कल अपनी अवधि पूरी करके बाहर आया हूँ।"

यह सुनते ही मेरा हृदय धड़कने लगा। मैंने अपनी आयु में कभी ऐसे मनुष्य से बातें न की थीं जिसने किसी पर प्राण घातक आक्रमण किया हो। अब मेरा हृदय तीव्रगति से धड़क रहा था और विचार कर रहा था कि अच्छा होता यदि यह न आता।

"आज मैं विवाह के कामों में तल्लीन हूँ।" साराँश यह कि मैंने उससे कहा—"अच्छा होता कि तुम और किसी समय आते।"

यह सुनते ही वह जाने के लिए मुड़ा किन्तु द्वार के समीप जाकर रुक गया और पूछने लगा—"क्या मैं अपनी छोटी बच्ची को देख सकता हूँ?"

आह ! उसका विचार था कि मुन्नी अब भी वही छोटी सी मुन्नी होगी जो उसे काबली वाला काबली वाला पुकारा करती थी। वह समझता था कि आज भी हम दोनों उसी प्रकार निस-संकोच भाव से खेलेंगे। आज भी वह मुन्नी के लिए एक काग़ज़ में कुछ अंगूर और किशमिश लपेट कर लाया था। मैंने उस से फिर एक बार कहा—"मैं आज कल बहुत काम में लगा हुआ हूँ, अधिक बात चीत का समय नहीं, अच्छा होता कि तुम फिर किसी समय आते।"

यह बात सुन कर वह निराश हो गया और मेरी ओर काम-ना से भरी हुई दृष्टि से देखता हुआ सलाम करके चला गया।

उसके जाने के तुरन्त पश्चात् मेरा हृदय घबराने लगा। मैं अपनी कुर्सी से उठा और उसको बुलाने जा ही रहा था कि वह स्वयं वापस आ गया और कुछ चीज़ें निकाल कर कहने लगा—"यह कुछ भेंट मैं अपनी छोटी बच्ची के लिये लाया था, कृपया यह उसे दे दीजियेगा।"

मैंने वह सब वस्तुएं उसके हाथ से ले लीं और मूल्य के रूप में उसे कुछ देने लगा, किन्तु उसने मेरा हाथ पकड़ कर बड़ी नम्रता से कहा—"बस मेरे लिए आपकी इतनी सहानुभूति ही बहुत है कि आप कभी-कभी इस गरीब देश वासी को स्मरण कर लिया करें। मैं तो प्रेम का सेवक हूँ, मुझे रुपये की आवश्यकता नहीं। आप की मुन्नी की तरह मेरी भी एक लड़की घर पर है जब मुझे वह स्मरण हो आती है तो मैं विकल हो जाता हूँ और उसके स्नेह आवेश में मुन्नी के लिये यह कुछ सामग्री ले आता हूँ। इस सामग्री से भगवान् जाने मुझे कुछ लाभ की इच्छा तो नहीं होती।

यह कह कर उसने जेब से एक स्याही लगा काग़ज़ का टुकड़ा निकाला और सावधानी से खोल कर मेरी मेज़ पर रख दिया।

यह उसकी दो हज़ार कोस दूर रहने वाली छोटी सी लड़की के स्याही भरे हाथ का चिन्ह था जिसे वह अपनी बच्ची की निशानी समझ कर प्राणों से प्रिय रखता था।

यह देख कर मेरे नेत्रों में आँसू भर आये और मैंने उस वास्तविकता को सर्वथा विस्मृत कर दिया, कि वह एक ग़रीब मेवा बेचने वाला काबली है और मैं......किन्तु क्या महानता में भी मैं उससे अधिक हूँ ?......नहीं, बिल्कुल नहीं। वह भी किसी का सहृदय पिता है। उस नन्ही बच्ची के हाथ का चिन्ह देख कर जो उस स्थान से बहुत दूर अफ़गानिस्तान की पहाड़ियों में स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती है, मेरी भावनाओं में उतार-चढ़ाव उत्पन्न हो गया और बिना किसी बाधा के मुझे अपनी मुन्नी याद आ गई। स्त्रियों के विरोध करने पर भी मैंने उसे अपने पास बुलवा भेजा।

वह विवाह के लाल रेशमी वस्त्र पहने हुए आई। माथे पर सन्दली टीका लगा हुआ था और शरीर लज्जा से संकुचित हो रहा था। काबली उसे इस अवस्था में देख कर थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर सहसा कुछ स्मरण करके बोला—"बच्ची क्या तुम अपनी ससुराल जा रही हो ?"

इस समय मुन्नी बचपन में काबली की ज़बान से सुने हुए इस शब्द का अर्थ समझ गई, किन्तु उत्तर देने की अपेक्षा वह शर्म से और भी सिमटी और अपनी आँखों को नीचे झुकाए मौन खड़ी रही।

आखिरकार जब मुन्नी वापस चली गई तो रहमान बेअख्त्यार हो गया और ठंडी सांस भरकर पृथ्वी पर बैठ गया। सम्भवतः उसने विचारा होगा कि मेरी बेटी भी अब जवान हो गई होगी।

विवाह की नौबत बजने लगी। शरद ऋतु के काँपते हुए सूर्य ने अपनी सुनेहरी किरणें सारे संसार पर डालनी आरम्भ कर दीं। इस वातावरण में रहमान की कल्पना अफगानिस्तान के लम्बे चौड़े मैदानों और ऊँचे पहाड़ों से अपना सिर टकराती फिर रही थी। मैंने उसे अपने देश जाने के लिए एक नोट भेंट किया और कहा—"अपने देश जाओ और अपनी बिछड़ी हुई बच्ची से मिलो। सम्भवतः तुम दोनों का यह मिलन मेरी लड़की के लिए ऋद्धि सिद्धि का कारण बने।"

एक बड़ी रकम के हाथ से निकल जाने के कारण मुझ को शोभा के बहुत से व्यर्थ और अनावश्यक सामानों में कमी करनी पड़ीं। इस से स्त्रियाँ बहुत रुष्ट हुईं, तथापि मैंने बिजली और फौजी बाजा बन्द करा दिया। उस समय मेरी आँखें दूर, बहुत दूर देश में, संसार के असीमित हर्ष का वह मोहक दृश्य देख रही थीं जब एक इकलौती लड़की अपने गरीब पिता के स्नेहमय हृदय पर सिर डाले खड़ी होगी।

—:**:—

कवि और कविता

राजमहल के सामने भीड़ लगी हुई थी। एक नवयुवक सन्यासी बीन पर प्रेम राग अलाप रहा था। उस का मधुर स्वर गूँज रहा था। उसके मुख पर दया और सहृदयता के भाव प्रकट हो रहे थे। स्वर के उतार चढ़ाव और बीन की झंकार दोनों ने मिल कर बहुत ही आनन्द प्रद स्थिति उत्पन्न कर रखी थी। दर्शक झूम-झूम कर आन्नद प्राप्त कर रहे थे।

गाना समाप्त हुआ, दर्शक चौंक उठे। रुपये पैसे की वर्षा होने लगी। एक-एक करके भीड़ छटने लगी। नवयुवक सन्यासी ने सामने पड़े हुए रुपये पैसों को बड़े ध्यान से देखा और आप ही आप मुस्करा दिया। उसने उस बिखरी हुई दौलत को एकत्रित किया और फिर उसे ठोकर मार कर बिखरा दिया। इसके पश्चात बीन उठा कर एक ओर को चल दिया।

: २ :

राज कुमारी माया ने भी उस युवक सन्यासी का गाना सुना था। दर्शक प्रतिदिन वहाँ आते और सन्यासी को न पाकर

निराश हो वापस चले जाते थे। राज कुमारी माया भी प्रतिदिन राज महल के सामने देखती और घंटों देखती रहती। जब रात्रि का अन्धकार सर्वत्र अपना आधिपत्य जमा लेता तो राज कुमारी खिड़की में से उठती। उठने से पहले वह सर्वदा एक निराशा जनक करुणामय आह खेंचा करती थी।

इसी प्रकार दिन, हफ़्ते और महीने बीतते गये। वर्ष भी समाप्त हो गया, परन्तु युवक सन्यासी फिर दिखाई न दिया। जो व्यक्ति उसकी खोज में आया करते थे, धीरे-धीरे उन्होंने वहाँ आना छोड़ दिया। वह उस घटना को भूल गये, किन्तु राज कुमारी माया........।

राज कुमारी माया उस युवक सन्यासी को हृदय से न भुला सकी। उसकी आँखों में हर समय उसका चित्र फिरता था। होते-होते उसने भी गाने का अभ्यास किया। वह प्रतिदिन अपने उद्यान में जाती और गाने का अभ्यास करती। जिस समय रात्रि की नीरवता में सोहनी की लय गूंजती तो सुनने वाले ज्ञान सून्य हो जाते थे।

: ३ :

राज कवि अनंगशेखर एक नौजवान व्यक्ति था। उस की कविता प्रभावशाली और ज़ोरदार होती थी। जिस समय वह दरबार में अपनी कविता गायन के साथ पढ़कर सुनाता तो सुनने वालों पर एक मादकता सी छा जाती, सून्यता का राज्य हर ओर होता। राजकुमारी माया को कविता से प्रेम था।

सम्भवतः वह भी अनंगशेखर की कविता सुनने के लिये विशेष दरबार में आ जाती थी।

राजकुमारी की उपस्थिति में अनंगशेखर की ज़बान लड़खड़ा जाती। वह ज्ञान सून्य सा खोया-खोया हो जाता था, किन्तु इस के साथ ही उसकी भावनाएं जागृत हो जाती थीं। वह झूम-झूम कर उपमा और उदाहरणों को सन्मुख रखता। सुनने वाले भी अनुरक्त हो जाते। उसके हृदय में भी प्रेम की नदी लहरें लेने लगती। उसको अनंगशेखर से कुछ प्रेम अनुभव होता किन्तु तुरन्त ही उसकी आँखें खुल जातीं और युवक सन्यासी का चित्र उस के सामने फिरने लगता। ऐसे मौके पर उसकी आँखों से आँसू छलकने लगते। अनंगशेखर आँसू भरी आँखों पर दृष्टि डालता तो स्वयं भी आँसुओं के प्रवाह में बहने लगता। उस समय वह शस्त्र डाल देता और वह अपनी ज़बान से अपने आप ही कहता—"मैं अपनी पराजय मान चुका।"

कवि अपनी धुन में मस्त था। चहुँ ओर प्रसन्नता और आनन्द दृष्टिगोचर होता था। वह अपने विचारों में क्या मगन था जैसे प्रकृति के आँचल में रंग रलियाँ मना रहा था।

सहसा वह चौंक पड़ा। उसने आखें फाड़-फाड़ कर अपने चहुँ ओर दृष्टि डाली और फिर एक उसाँस ली। सामने एक काग़ज़ पड़ा था। उस पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हुई थीं। रात्रि का अन्धकार फैलता जा रहा था। वह वापस हुआ।

राज महल समीप था और उससे मिला हुआ उद्यान था। अनंगशेखर बे काबू हो गया, राज कुमारी की खोज उसको बरवश उद्यान कें अन्दर ले गई।

चन्द्रमा की किरणें जलश्रोत की लहरों से अठखेलियाँ कर रही थीं, प्रत्येक दिशा में जूही और मालती की गंध प्रसारित थी, कवि आनन्दप्रद दृश्य के देखने में तल्लीन हो गया। भय और शंका ने उसे आ दबाया। वह आगे कदम न उठा सका। समीप ही एक घना वृक्ष था। उसकी छाया में खड़े होकर वह उद्यान की बहार का आनन्द प्राप्त करने लगा। इसी बीच में वायु का एक मधुर झोंका आया। उसने अपने शरीर में एक कम्पन अनुभव किया। इसके बाद उद्यान से एक मधुर स्वर गूंजा, कोई गा रहा था। वह अपने आपे में न था, कुछ खो सा गया। मालूम नहीं इस स्थिति में वह कितनी देर खड़ा रहा। जिस समय वह होश में आया, तो देखा कोई पास खड़ा है। वह चौंक उठा, उसके सामने राज कुमारी माया खड़ी थी।

अनंगशेखर का सिर नीचा हो गया। राज कुमारी ने मुस्कुराते हुए होंटों से पूछा—"अनंगशेखर ! तुम यहाँ क्यों आये ?"

कवि ने सिर उठाया, फिर कुछ लजाते हुए राज कुमारी की ओर देखा, फिर भी मुख से कुछ न कहा।

राज कुमारी ने फिर पूछा—"तुम यहाँ क्यों आये।"

इस बार कवि ने साहस से काम लिया। हाथ में जो पत्र था वह राज कुमारी को दे दिया। राज कुमारी ने कविता पढ़ी। उस कविता को अपने पास रखना चाहा किन्तु वह छुट कर हाथ से गिर गई। राज कुमारी तीर की भाँति वहाँ से चली गई। अब कवि से सहन न हो सका, वह ज्ञान सून्य होकर चिल्ला उठा—"माया, माया।"

परन्तु अब माया कहाँ थी।

: ४ :

राज दरबार में एक युवक आया, दरबारी चिल्ला उठे—"अरे यह तो वही सन्यासी है जो उस दिन राज महल के सामने गा रहा था।"

राजा ने मालूम किया—"यह युवक कौन है ?"

युवक ने उत्तर दिया—"महाशय मैं कवि हूँ।"

राज कुमारी उस युवक को देख कर चौंक उठी।

राज कवि ने भी उस युवक पर दृष्टि डाली, मुख फक़ हो गया। पास ही एक व्यक्ति बैठा हुआ था उसने कहा—"वाह यह तो एक भिक्षुक है।"

राज कवि बोल उठा—"नहीं उस का अपमान न करो, वह कवि है।"

चहुँ ओर सन्नाटा छा गया। महाराज ने युवक से कहा—"कुछ अपनी कविता सुनाओ।"

युवक आगे बढ़ा, उसने राज कुमारी को और राज कुमारी ने उसको देखा। स्वाभिमान अनुभव करते हुए उसने कदम आगे बढ़ाए।

राज कवि ने भी यह स्थिति देखी तो उसके मुख पर हवा-इयाँ उड़ने लगीं।

युवक ने अपनी कविता सुनानी आरम्भ की। प्रत्येक चरण पर "वाह वाह" की ध्वनियें गूंजने लगीं। किसी ने ऐसी कविता आज तक न सुनी थी।

युवक का मुख स्वाभिमान और प्रसन्नता से दमक उठा। वह मस्त हाथी की भाँति झूमता हुआ आया और अपने स्थान पर

बैठ गया। उसने एक वार फिर राज कुमारी की ओर देखा और इसके पश्चात् राज कवि की ओर।

महाराज ने राज कवि से कहा—"तुम भी अपनी कविता सुनाओ।"

अनंगशेखर चेतना सून्य सा बैठा था। उस के मुख पर निराशा और असफलता की झलक प्रकट हो रही थी।

महाराज फिर बोलें—"अनंग शेखर! किस चिन्ता में निमग्न हो? क्या इस युवक कवि का उत्तर तुम से नहीं बन पड़ेगा?"

यह अपमान कवि के लिए असहनीय था। उसकी आँखें रक्तिम हो गईं, वह अपने स्थान से उठा और आगे बढ़ा। उस समय उसके कदम डगमगा रहे थे।

आगे पहुँच कर वह रुका, हृदय खोल कर उसने अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया। चहुँ ओर सून्यता और ज्ञान सून्यता छा गई, श्रोता मूर्ति सी बन कर रह गये।

राज कवि मौन हो गया। एक बार उसने चहुँ ओर दृष्टि-पात किया। उस समय राज कुमारी का मुख पीला था। उस युवक का घमंड भी टूट चुका था। धीरे-धीरे सब दरबारी नींद से चौंके, चहुँ ओर से धन्य है धन्य है की ध्वनि गूंजी। महा-राज ने राज सिंहासन से उठकर कवि को अपने हृदय से लगा लिया। कवि की यह अन्तिम विजय थी।

महाराज ने निवेदन किया—"अनंग! मांगो क्या मांगते हो? जो मांगोगे दूंगा।"

राज कवि कुछ देर तक सोचता रहा। इसके बाद उसने कहा—"महाराज मुझे और कुछ नहीं चाहिए! मैं केवल राज कुमारी का इच्छुक हूँ।"

यह सुनते ही राज कुमारी को गश आ गया। कवि ने फिर कहा—महाराज आप के कथन के अनुसार राज कुमारी मेरी हो चुकीं अब जो चाहूँ कर सकता हूँ" यह कह कर उसने युवक कवि को अपने समीप बुलाया और कहा।

"मेरे जीवन का मुख्य उद्देश यह था कि राज कुमारी का प्रेम प्राप्त करूँ। तुम नहीं जानते कि राज कुमारी की प्रसन्नता और सुख के लिये मैं अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार हूँ। हाँ! ए युवक! तुम इनमें से किसी बात से परिचित नहीं हो किन्तु थोड़ी देर के पश्चात् तुम को ज्ञात हो जाएगा कि मैं ठीक कहता था या नहीं।"

कवि की ज़बान रुक गई, उसका स्वर भारी हो गया, सिलसिला जारी रखते हुए कहा—"क्या तुम जानते हो कि मैंने क्या देखा? नहीं! और इसका न जानना ही तुम्हारे लिये अच्छा है। सोचता था, जीवन सुख से व्यतीत होगा, परन्तु यह आशा भ्रामक सिद्ध हुई। जिस से मुझे प्रेम है वह अपना हृदय किसी और को भेंट कर चुकी है। जानते हो अब राज कुमारी को मैं पाकर भी प्रसन्न न हो सकूंगा, क्योंकि राज कुमारी प्रसन्न न रह सकेगी। आओ, ए युवक आगे आओ! तुम को मुझ से घृणा हो तो बेशक ही हुआ करे, आओ आज मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति तुम्हें सौंपता हूँ।"

युवक कवि मौन हो गया! किन्तु उसका मौन क्षणिक था। सहसा उसने महाराज से कहा—"महाराज एक विनती है और वह यह कि मेरे स्थान पर इस युवक को राज कवि बनाया जाए।"

राज कवि के कदम लड़खड़ाने लगे। देखते-देखते वह पृथ्वी पर आ रहा। अन्तिम बार पथराई हुई दृष्टि से उसने राज

कुमारी की ओर देखा, यह दृष्टि अर्थमयी थी। वह कवि दरबार से कह रही थीं—"मेरी प्रसन्नता यही है कि तुम प्रसन्न रहो ! विदा !!"

इसके पश्चात् कवि ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और ऐसी बन्द कीं कि फिर न खुलीं।

-:**:-

यह स्वतन्त्रता

पाठक चक्रवर्ती अपने मुहल्ले के लड़कों का सरदार था। सब उसकी आज्ञा मानते थे। यदि कोई उस के विरुद्ध जाता तो उस पर आफ़त आ जाती थी, सब मुहल्ले के लड़के उसको मारते थे। आखिरकार बेचारे को विवश होकर पाठक से क्षमा मांगनी पड़ती। एक बार पाठक ने एक नया खेल सोचा। नदी के किनारे एक लकड़ी का बड़ा लट्ठा पड़ा था, जिस की नौका बनाई जाने वाली थी। पाठक ने कहा—"हम सब मिल कर उस लट्ठे को लुढ़काएं, लट्ठे का स्वामी हम पर क्रुद्ध होगा और हम सब उसका मज़ाक उड़ा कर खूब हंसेंगे।" सब लड़कों ने उसका अनुमोदन किया।

जब खेल आरम्भ होने वाला था तो पाठक का छोटा भाई मक्खन विना किसी से एक भी शब्द कहे उस लट्ठे पर बैठ गया। लड़के रुके और एक क्षण तक मौन रहे, फिर एक लड़के ने उसको धक्का दिया, परन्तु वह न उठा। यह देख कर पाठक को क्रोध आया। उसने कहा—"मक्खन यदि तू न उठेगा तो इस का बुरा परिणाम होगा।" किन्तु मक्खन यह सुनकर और आराम से बैठ गया। अब यदि पाठक कुछ हल्का पड़ता, तो उसकी बात

जाती रहती। बस उसने आज्ञा दी कि लट्ठा लुढ़का दिया जाए।

लड़के आज्ञा पाते ही एक दो तीन कह कर लट्ठे की ओर दौड़े और सब ने ज़ोर लगा कर लट्ठे को धकेल दिया। लट्ठे को फिसलता और मक्खन को गिरता देख कर लड़के बहुत प्रसन्न हुए किन्तु पाठक कुछ भयभीत हुआ। क्योंकि वह जानता था कि इसका परिणाम क्या होगा।

मक्खन पृथ्वी पर से उठा और पाठक को लातें और घूंसे मारकर घर की ओर रोता हुआ चल दिया।

पाठक को लड़कों के सामने अपने इस अपमान से बहुत खेद हुआ। वह नदी किनारे मुंह हाथ धोकर बैठ गया और घास को तोड़-तोड़ कर चबाने लगा। इतने में एक नौका वहाँ आई जिस में एक अधेड़ आयु वाला व्यक्ति बैठा था। उस व्यक्ति ने पाठक के समीप आकर मालूम किया—"पाठक चक्रवर्ती कहाँ रहता है ?"

पाठक ने उपेक्षा भाव से बिना किसी ओर संकेत किये हुए कहा—"वहाँ" और फिर घास चबाने लगा।

उस व्यक्ति ने पूछा—"कहाँ ?"

पाठक ने अपने पाँव फैलाते हुए उपेक्षा से उत्तर दिया—"मुझे नहीं मालूम।"

इतने में उसके घर का नौकर आया और उसने उस से कहा—"पाठक तुम्हें तुम्हारी मां बुला रही हैं।"

पाठक ने जाने से इन्कार किया, किन्तु नौकर चूंकि मालकिन की ओर से आया था, इस वजह से वह उसको जबर्दस्ती मारता हुआ ले गया।

पाठक जब घर आया तो उसकी मां ने क्रोध में आकर पूछा—"तूने मक्खन को फिर मारा ?"

पाठक ने उत्तर दिया—"नहीं तो, तुम से किसने कहा ?"

मां ने कहा—"झूठ मत बोल तूने मारा है।"

पाठक ने फिर उत्तर दिया—"नहीं यह बिल्कुल असत्य है, तुम मक्खन से पूछो।"

मक्खन चूंकि कह चुका था कि मुझे मारा है इसलिये उसने अपने शब्द कायम रक्खे और दोबारा फिर कहा—"हाँ हाँ तुमने मारा है।"

यह सुनकर पाठक को क्रोध आया और मक्खन के समीप आकर उसे मारना आरम्भ कर दिया। उसकी मां ने उसे तुरन्त बचाया और पाठक को मारने लगी। उसने अपनी मां को धक्का दे दिया। धक्के से फिसलते हुए उसकी मां ने कहा—"अच्छा तू अपनी मां को भी मारना चाहता है।"

ठीक उसी समय वह अधेड़ आयु का व्यक्ति घरमें आया और कहने लगा—"क्या किस्सा है ?"

पाठक की मां ने पीछे हटकर आने वाले को देखा और तुरन्त ही उसका क्रोध आश्चर्य में परिवर्तित हो गया। क्योंकि उसने अपने भाई को पहचाना और कहा—"क्यों दादा ! तुम यहाँ ? कैसे आये ?" फिर उसने नीचे को झुकते हुए उसके चरण छूए।

उसका भाई विशम्भर उसके विवाह के पश्चात् बम्बई चला गया था, वह व्यापार करता था। अब वह कलकत्ते अपनी बहिन से मिलने के लिये आया, क्योंकि बहिन के पति की मृत्यु हो गई थी।

कुछ दिन तो बड़ी प्रसन्नता के साथ बीते। एक दिन विशम्भर ने दोनों लड़कों की पढ़ाई के विषय में पूछा।

उसकी बहिन ने कहा—"पाठक हमेशा दुःख देता रहता है और बहुत चंचल है, किन्तु मक्खन पढ़ने का बहुत इच्छुक है।"

यह सुनकर उसने कहा—"मैं पाठक को बम्बई ले जाकर पढ़ाउंगा।"

पाठक भी चलने के लिये सहमत हो गया। माँ के लिए यह बहुत हर्ष की बात थी क्योंकि वह सर्वदा डरा करती थी कि कहीं किसी दिन पाठक मक्खन को नदी में न डुबो दे या उसे जान से न मार डाले।

पाठक प्रतिदिन मामा से पूछता था कि तुम किस दिन चलोगे। आखिर को चलने का दिन आ गया। उस रात पाठक से सोया भी न गया, सारा दिन जाने की खुशी में इधर-उधर फिरता रहा। उसने अपनी मछली पकड़ने की हत्थी, पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े और बड़ी पतंग भी मक्खन को दे दी, क्योंकि उसे जाते समय मक्खन से सहानुभूति सी हो गई थी।

: २ :

बम्बई पहुँच कर पाठक अपनी मामी से पहली बार मिला। वह उसके आने से कुछ प्रसन्न न हुई। क्योंकि उसके अपने तीन बच्चे ही काफी थे एक और चंचल लड़के का आ जाना उसके लिए आपत्ति थी।

ऐसे लड़के के लिए उस का अपना घर ही उसको स्वर्ग होता है उसके लिये एक नये घर में नये लोगों के साथ रहना बहुत कठिन हो गया।

पाठक को यहाँ पर साँस लेना कठिन हो गया। वह रातों को प्रतिदिन अपने नगर के स्वप्न देखा करता था और वहाँ जाने की इच्छा करता था। उस को वह स्थान याद आता जहाँ वह पतंग उड़ाता था और जहाँ वह जब कभी चाहता जाकर स्नान करता था। मां का ध्यान उसे दिन-रात विकल करता रहता था। उसकी सारी शक्ति समाप्त हो गई........अब स्कूल में उस से अधिक कमजोर कोई विद्यार्थी न था। जब कभी उसका अध्यापक उस से कोई प्रश्न करता, तो वह मौन खड़ा हो जाता और चुपचाप अध्यापक की मार सहन करता। जब दूसरे लड़के खेलते तो वह अलग खड़ा होकर घरों की छतों को देखा करता।

एक दिन उसने बहुत साहस करके अपने मामा से मालूम किया—"मामा जी मैं कब तक घर जाउंगा ?"

मामा ने उत्तर दिया—"ठहरो, जब तक कि छुट्टियाँ न हो जाएं।"

किन्तु छुट्टियों में अभी बहुत दिन शेष थे, इस लिये उस को काफी प्रतिक्षा करनी पड़ी। इस बीच में एक दिन उसने अपनी किताब खो दी। अब उस को अपना पाठ याद करना बहुत कठिन हो गया। प्रतिदिन उसका अध्यापक उसे बड़ी निर्दयता के साथ मारता था। उसकी दशा इतनी खराब हो गई कि उसके मामा के बेटे उसे अपना कहते हुए शरमाते थे। पाठक मामी के पास गया और कहने लगा—"मैं स्कूल न जाऊँगा, मेरी पुस्तक खो गई है।"

मामी ने क्रोध से अपने होंठों को चबाते हुए कहा—"दुष्ट मैं तुझ को कहाँ से महीने में पाँच बार पुस्तक खरीद कर दूँ ?"

इस समय पाठक के सिर में दर्द उठा, वह सोचता था कि मलेरिया हो जाएगा, किन्तु सब से बड़ा सोच विचार यह था कि बीमार होने के पश्चात् वह घर वालों के लिये एक आपत्ति बन जाएगा।

दूसरे दिन प्रातः पाठक कहीं भी दिखाई न दिया। उसको चारों तरफ खोजा गया किन्तु वह न मिला। वर्षा बहुत अधिक हो रही थी और वह व्यक्ति जो उसे खोजने गये, बिल्कुल भीग गये। आखिर कार विशम्भर ने पुलिस को सूचना दे दी।

: ३ :

मध्याह्न पुलिस का एक सिपाही विशम्भर के द्वार पर आया। वर्षा अब भी हो रही थी और सड़कों पर पानी खड़ा था। दो सिपाही पाठक को हाथों पर उठाए हुऐ लाए और विशम्भर के सामने रख दिया। पाठक के सिर से पाँव तक कीचड़ लगी हुई और उसकी आँखें ज्वर से लाल थीं। विशम्भर उसको घर के अन्दर ले गया। जब उसकी पत्नी ने पाठक को देखा तो कहा—"यह तुम क्या आपत्ति ले आये हो, अच्छा होता जो तुम इस को घर भिजवा देते।"

पाठक ने यह शब्द सुने और सिसकियाँ लेकर कहने लगा—"मैं घर जा तो रहा था परन्तु वे दोनों मुझे जबर्दस्ती ले आए।"

ज्वर बहुत तीव्र हो गया था, सारी रात वह अचेत पड़ा रहा, विशम्भर एक डाक्टर को लाया। पाठक ने आँखें खोलीं और छत की ओर देखते हुए कहा—"छुट्टियाँ आ गई हैं क्या ?"

विशम्भर ने उसके आँसू पूंछे और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसके सिरहाने बैठ गया। पाठक ने फिर बड़बड़ाना शुरू किया—"मां, मां, मुझे इस प्रकार न मारो, मैं सच-सच बताता हूँ।"

दूसरे दिन पाठक को कुछ चेत हुआ। उसने कमरे के चहुँ ओर देखा और एक ठंडी सांस लेते हुए अपना सिर तकिये पर डाल दिया।

विशम्भर समझ गया और अपना मुख उसके समीप लाते हुए कहने लगा—"पाठक मैंने तुम्हारी मां को बुलाया है।"

पाठक फिर उसी प्रकार चिल्लाने लगा। कुछ घंटों के पश्चात् उसकी मां रोती हुई कमरे में आई। विशम्भर ने उसको मौन रहने के लिये कहा किन्तु वह न मानी और अपने आप को पाठक की चारपाई पर डाल दिया और चिल्लाते हुए कहने लगी—"पाठक, मेरे प्यारे बेटे पाठक ?"

पाठक की साँस कुछ समय के लिये रुकी, उसकी नाड़ी हल्की पड़ी और उसने एक सिसकी ली।

उसकी मां फिर चिल्लाई—"पाठक मेरे आँख के तारे, मेरे हृदय की कौंपल।"

पाठक ने बहुत धीरे से अपना सिर दूसरी ओर किया और बिना किसी ओर देखते हुए कहा—"हाँ ! क्या छुट्टियाँ आ गई हैं ?"

—:*:—

विद्रोही

लोग कहते हैं अंग्रेजी पढ़ना और भाड़ झोंकना बराबर है। अंग्रेज़ी पढ़ने वालों की मिट्टी खराब है। अच्छे-अच्छे एम० ए० और बी० ए० मारे-मारे फिरते हैं, कोई उन्हें पूछता तक नहीं। मैं इन बातों के विरुद्ध हूं। अंग्रेज़ी पढ़-लिख कर मैं डाक्टर बना हूँ, सैंकड़ों रुपये कमाता हूँ। अँग्रेज़ी शिक्षा के विरोधी तनिक आँख खोल कर मेरी दशा देखें।

सोमवार का दिन था। सवा नौ बजे मेरे मित्र बाबू सन्तोष कुमार बी० एस० सी० एक नवयुवक रोगी को साथ लिये मेरे दवाखाने में आये। उस रोगी की आयु अठारह उन्नीस वर्ष से अधिक न थी। गेहुंवा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, गठीला शरीर, कपड़े स्वदेशी, किन्तु मैले थे। सिर के बाल लम्बे और रूखे। उस नवयुवक को देख कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

सन्तोष कुमार ने नवयुवक का परिचय कराते हुए कहा—"आप जिला नदिया के निवासी हैं, नाम ललित कृष्ण बोस है किन्तु ललित के नाम से प्रसिद्ध हैं। एफ० ए० में पढ़ते हैं परन्तु किसी कारणवश कालेज छोड़ दिया।"

मैंने मुस्कुराते हुए पूछा—"आज कल आप क्या करते हैं?"

सन्तोष कुमार ने उत्तर दिया—"दो महीने पहिले यह किरण प्रेस में प्रूफ रीडर थे परन्तु इस काम में जी न लगने के कारण नौकरी छोड़ दी। परसों से ज्वर से पीड़ित हैं, कोई अच्छी औषधि दीजिये।"

आज से पहिले भी मैंने इस नवयुवक को कहीं देखा है परन्तु कहाँ देखा है और कब ? यह स्मरण नहीं। रोग की छान-बीन के पश्चात् मैंने ललित से कहा—"मालूम होता है आप आवश्यकता से अधिक परिश्रम करते हैं, खैर कोई बात नहीं दो दिन में आराम हो जाएगा।"

ललित बहुत मधुर-भाषी था। मैं उसकी बातों पर लट्टू हो गया। मैंने कहा—"हर तीन घंटे के अन्तर से दवा पीजियेगा। दूध और सागूदाना के सिवाय कोई और चीज़ खाने की आवश्यकता नहीं। कल फिर आने का कष्ट कीजियेगा।"

ललित हंसने लगा। जाते समय मैंने उससे कल अवश्य आने के लिये कहा परन्तु ललित ने शाम ही को आने का वचन दिया।

ललित प्रतिदिन सुबह शाम मेरे यहाँ आने लगा। मैं उसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न था। घंटों इधर-उधर की बातें होती थीं। ललित वास्तव में ललित था। वह मनुष्य नहीं देवता था।

ललित अब मेरे घर पर ही रहने लगा। मेरा लड़का उमाशंकर आठवीं कक्षा में पढ़ता था। ललित ने कहा—"मैं इसको बंगला सिखाउँगा, बंगला बड़ी मधुर भाषा है।" मैं स्वयं भी यही चाहता था। उमाशंकर ने बंगला पढ़ना शुरू कर दिया, ललित आज से उमाशंकर का अध्यापक हो गया।

: २ :

कलकत्ते जैसे बड़े नगर में यूं तो प्रत्येक त्योहार पर बड़ी रौनक होती है किन्तु दुर्गा पूजा के अवसर पर असाधारण धूम-धाम और चहल-पहल दिखाई देती है। दशहरा के दिन प्रायः

सारे रास्तों पर जन समूह होता है। बड़े बूढ़ों में भी उस दिन एक विशेष हर्ष की भावना होती है, लड़कों और युवकों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी धुन में मस्त दिखाई देता है। जिस समय दुर्गा की सवारी सामने से जाती है तो "काली माई की जय" के उच्च जय घोष से आकाश गूंज उठता है, हृदय में एक अनुपम आवेश उत्पन्न होता है।

उस दिन दुर्गा पूजा थी। हम सब व्यक्ति भी शोभा देखने गये थे, ललित साथ था। पहले की अपेक्षा ललित में आज अधिक प्रदर्शन था। प्रत्येक स्थान पर वह देवी की मूर्ति को नमन करता, कभी उसके नेत्र लाल हो जाते और कभी उनमें आँसू उमड़ आते थे। मैंने देखा, कभी वह हर्षातिरेक से नाचने कूदने लगता और कभी सर्वथा मौन हक्का बक्का होकर इधर-उधर देखता। मैंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु उसकी इन चेष्टाओं को न समझ सका। उस से मालूम करने का साहस न हुआ।

हमारे पीछे एक गरीब बुढ़िया एक आठ नौ वर्ष के बच्चे को साथ लिये खम्भ की आड़ में खड़ी थी। सम्भवतः अथाह जन-समूह के कारण उसको किसी ओर जाने का साहस न होता था। वह भिकारन थी। गरीबी के कारण पेट पीठ से लग गया था। उसने अपना दाहिना हाथ भीख के लिये पसार रखा था। बच्चा अनुनय विनय करते हुए कह रहा था—"बाबा भूके की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।" किन्तु संसार में गरीबों की कौन सुनता है। गरीब बुढ़िया की ओर किसी ने आँख उठा कर भी न देखा, प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रसन्नता में प्रसन्न था। बच्चे ने बुढ़िया से कहा—"घंटों बीत गये परन्तु अब तक दो पैसे मिले हैं, सोचता था आज दुर्गा पूजा है कुछ अधिक ही

मिल जाएगा किन्तु खेद है कि चिल्लाते-चिल्लाते गला बैठ गया, कोई सुनता ही नहीं। जी में आता है यहीं प्राण त्याग दूँ।" यह कह कर बच्चा रोने लगा।"

बुढ़िया की आँखों में आँसू झलकने लगे। उसने कहा "बेटा! अपना भाग्य ही खोटा है, कल सत्तू खाने के लिये ६ पैसे मिल गये थे आज उसका भी सहारा दिखाई नहीं देता। आज भूखे पेट ही रहना होगा। हाय! यह हमारे पाप का फल है।

बुढ़िया ने एक ठंडी उसाँस ली और अपने फटे हुए मैले आँचल से अपनी और बच्चे की आँखें पोंछीं। बच्चा फिर उसी विनती से कहने लगा—"बाबा भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।" परन्तु नक्कार खाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है। इतना अधिक जन-समूह था किन्तु उस विनती पर कोई कान देकर सुनने वाला न था।

ललित उस समय बुढ़िया की ओर देख रहा था। उसकी दुखित दशा देख कर उसका हृदय विकल हो गया। उसने अपनी जेब टटोली, उसमें फूटी कौड़ी भी न थी, बहुत व्याकुल हुआ। उसने अपनी दूसरी जेब में हाथ डाला, कुछ आवश्यक कागज़ों के बीच में एक अठन्नी निकल आई। ललित की निराशा प्रसन्नता में परिवर्तित हो गई, मुखड़ा खिल गया। वह अठन्नी उसने बुढ़िया के हाथ पर रख दी।

जिस प्रकार दस पाँच रुपये लगाने वाले को लाटरी में दस बीस हज़ार रुपये मिल जाने पर प्रसन्नता होती है, जिस प्रकार एक युवती नये आभूषण पहन कर प्रसन्न होती है, जिस प्रकार एक सूखे हुए खेत में वर्षा हो जाने से किसान हर्ष से फूला नहीं समाता, जिस प्रकार कोई नया कवि अपनी कविता को किसी

पत्रिका में छपा हुआ देख कर प्रसन्न होता है उस से कहीं अधिक उस गरीब बुढ़िया को अठन्नी पाकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता के मारे उसकी आँखों में आँसू भर आये, वह निर्निमेष ललित की ओर देखने लगी। उसका भग्न हृदय ललित को सहस्रों आशीष दे रहा था।

यह दशा देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने अनेकों बार उस बुढ़िया को देखा था, उससे मुझे सहानुभूति भी थी किन्तु कभी यह साहस न हुआ कि उसकी सहायता करूँ। कभी हृदय में आता कि उसको कुछ देना चाहिये, कभी यह कहता कि इसमें क्या रखा है संसार में लाखों गरीब हैं किस किसकी सहायता करूँगा। ललित जिसे कभी-कभी भूखे रहने तक की दशा प्राप्त हो जाती, जिस को मैंने कभी एक पैसे का पान तक चबाते न देखा था और जो मेरी दृष्टि में बहुत कंजूस था, उसका यह दान देख कर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही।

स्वप्न में उस दिन मुझे ललित की बहुत सी विशेषताएं दिखाई दीं। मालूम नहीं वह सत्य थीं या असत्य, किन्तु ज्योतिष के हिसाब से उनको सत्य ही समझना चाहिये। इस का कारण यह कि रात मुझे ढाई बजे नींद आई और वह स्वप्न मैंने रात के अन्तिम पहरों में देखे थे।

: ३ :

ललित के सहयोग से उमाशंकर में आश्चर्य जनक परिवर्तन हो गये थे। क्या तो वह विना मोटर के घर से बाहर न निकलता था या अब यह दशा थी कि ललित के साथ वायु सेवन के लिए प्रतिदिन कोसों पैदल निकल जाता, सिनेमा देखने का चस्का

जाता रहा, व्यक्तिगत विलास सामग्री और प्रदर्शन के व्यसन को भी तिलाँजली दे दी। अंग्रेजी शिक्षा से अब उसे घृणा सी हो गई।

रविवार के दिन मेरे यहाँ कुछ मित्रों की गार्डन पार्टी थी, खूब आनन्द रहा। मैं अपने मित्रों के सत्कार में लगा हुआ था। उधर उपेन्द्र कुमार, गोपाल, उमाशंकर और ललित में चुपके-चुपके बातें हो रही थीं। ये लोग क्या बातें कर रहे थे, यह बताना कठिन है क्योंकि प्रथम तो पार्टी की झंझटों में उलझा हुआ था, उनकी ओर अधिक ध्यान न था, दूसरे वह मेरे से दूर थे और धीरे-धीरे बातें कर रहे थे, बीच-बीच में जब ये लोग खिल-खिलाकर हंस पड़ते तो मुझे भी हंसी आ जाति थी।

गोपाल बाबू को मैं काफी समझ से जानता हूँ, रिश्ते में यह सन्तोष कुमार के बहनोई होते हैं। प्रथम श्रेणी के शौकीन, प्रेमी स्वभाव के हैं। आज देखा तो कलाई रिस्ट वाच से खाली थी, रेशम की कमीज़ में से सोने के बटन गायब थे, होंटों की लाली गायब, बाल भी फैशन के न थे। मैंने सन्तोष कुमार से धीरे से कहा--"आज तो भाई साहब का कुछ और ही रंग है वह पहली सी चटक-मटक दिखाई नहीं देती, क्या बात है? कुछ समझ में नहीं आता।"

सन्तोष कुमार ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"आज कल इन पर स्वदेशी का भूत सवार है। कई महीने से यह इसी रंग में रंगे हुए हैं, क्या आपने आज ही इन्हें इस दशा में देखा है?"

मैंने उत्तर दिया—"हाँ! और इसी लिये मुझे आश्चर्य हुआ?"

सन्तोष कुमार ने किसी सीमा तक उपेक्षा भाव से कहा—"हमें क्या मतलब? जो जिसके जी में आए करे, बार-बार सम-

झाने पर भी यदि कोई न सुने तो क्या किया जाए। अधिक कहने सुनने से अपनी प्रतिष्ठा पर आँच आती है। जैसी करनी वैसी भरनी प्रसिद्ध है। जब बन्दी गृह में चक्की पीसनी पड़ेगी तो आटे दाल का भाव मालूम हो जाएगा।"

मैंने कहा—"सन्तोष कुमार तुम बिल्कुल सत्य कहते हो जमाने की हवा कुछ बदली हुई दिखाई देती है। ललित को भी कुछ स्वदेशी की सनक है। यद्यपि मैं स्वदेशी का विरोधी हूँ और देश भक्त मुझे एक आँख नहीं भाते तब भी मैं ललित की स्पष्ट वादिता और सात्विकता पर मुग्ध हूँ। उस की रुचि मुझे बहुत भाती है।"

सन्तोष कहने लगा—"किन्तु आप की भाँति उसकी धाक नहीं बंध सकती। आप जब पाश्चात्य वस्त्र पहन कर बाहर निकलते होंगे तो अशिक्षित मनुष्य भय से काँप उठते होंगे और शिक्षित व्यक्ति आप से नमस्कार करके आकाश पर पहुँच जाते होंगे।"

मुझे हंसी आ गई, सन्तोष कुमार भी हंसने लगा।

उस दिन रात को मैं अचेत सोया हुआ स्वप्न देख रहा था कि किसी ने मुझे झंझोड़ा, मैं चौंक गया। आँखें खोल कर देखता हूँ तो मेरा नौकर राम लाल हाथ में लालटेन लिये खड़ा है।

मुख पर हवाइयाँ उड़ रही हैं, शरीर थर-थर काँप रहा है। मैंने घबरा कर मालूम किया—"क्यों राम लाल क्या बात है, तुम काँप क्यों रहे हो?"

राम लाल ने उत्तर दिया—"बाबू पुलिस ने सारा मकान घेर रखा है, कोई बात समझ में नहीं आती। मैं कोई चोर या बद-माश न था, पुलिस का नाम सुनकर घबरा गया। दो एक बेइमा-

नियाँ जो छुप कर की थीं वह आँखों के सामने फिरने लगीं। पूर्ण विश्वास हो गया कि पुलिस मुझे गिरफ़्तार करने आई है।"

पुलिस की हलचल सुनकर मेरी चेतना जाती रही। साहस करके नीचे आया। राम लाल बोला—"आज्ञा हो तो दो चार पुलिस वालों को पृथ्वी पर लिटा दूँ ?"

मैंने कहा—"सावधान ! भूल कर भी ऐसा न करना, पुलिस से बिगाड़ करना अच्छा नहीं होता।"

द्वार खोल दिया। दो तीन सार्जेन्टों के साथ एक श्वेत वस्त्रधारी बंगाली और आठ दस सिपाही कमरे के अन्दर घुस आये।

बंगाली बाबू ने जेब से एक बादामी रंग का कागज़ निकाला और मुझ को सम्बोधन करके कहा—"डाक्टर साहब यह वारन्ट गिरफ़तारी है, आप के यहाँ विद्रोह की गुप्त मन्त्रा का स्थान है, विद्रोही तुरन्त गिरफ़तार किया जाएगा।"

मुझ पर बिजली सी टूट पड़ी। मैं समझा सम्भवतः मैं ही विद्रोही हूँ और मेरी गिरफ़तारी का यह वारन्ट है, मुझ को पुलिस गिरफ़तार करने आई है। आह ! अब कुशल नहीं, यदि फाँसी से बच रहा तो काले पानी अवश्य भेजा जाउंगा।"

मैंने कंपकपाते हुए कहा—"विद्रोही और वह भी मेरे मकान में ? आप क्या कह रहे हैं। मैं सरकार का शुभाकाँक्षी हूँ, इसी वर्ष मुझे राय साहब की उपाधि मिली है। आप को भ्रम हुआ है।"

एक सार्जेन्ट ने त्यौरी बदल कर उत्तर दिया—"अम काला आदमी नहीं है, गोरा आदमी कभी झूठ नहीं बोल सकता।"

बंगाली बाबू ने तनिक रुष्टता की मुद्रा में कहा—"पुलिस को

भ्रम नहीं हो सकता, भ्रम प्राय: डाक्टरों को हुआ करता है ।"

मैंने पूछा—"विद्रोही का नाम क्या है ?"

कहा—"शरद कुमार ।"

"बंगाली है ?"

"हाँ ।"

"कहाँ का रहने वाला है ?"

"श्री राम पुर का ।"

मेरे सिर से जैसे विपत्ति सी टल गई । नाम सुनते ही होंटों पर हंसी खेलने लगी । मैंने कहा—"महाशय इस नाम का कोई व्यक्ति मेरे घर में नहीं है ।"

"कोई और बंगाली आप के मकान में है ?"

"हाँ एक सीधा सादा नवयुवक है जो उमाशंकर को बंगला भाषा पढ़ाता है ।"

उस श्वेत वस्त्रधारी बंगाली ने कहा—"हाँ उस की ही खोज है । उसका असली नाम शरद कुमार है । पुलिस महीनों से उसके पीछे हैरान है, हाथ ही न आता था ।"

मैंने आश्चर्य से कहा—"वह तो ज़िला नदिया का रहने वाला है और आप कहते हैं कि अपराधी श्रीराम पुर का निवासी है ।"

"यह सब उसकी चालें हैं, वह श्रीराम पुर का निवासी है । उसके पिता का नाम हृदय नाथ है जो एक प्रसिद्ध ज़मीन्दार हैं ।"

मैंने फिर पूछा—"उस पर क्या अपराध है ?"

इन्स्पेक्टर ने उतर दिया—"विद्रोह" यह एक गुप्त संस्था से उसका सम्बन्ध है । बम बनाना, चोरी, डकैती, कतल, लूटमार

यह उसकी देश सेवा है।"

यह सुन कर मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा—"आप महानुभाव एक सत्रह अठारह वर्ष के बंगाली नवयुवक को विद्रोही बना रहे हैं, यह भला कोई मानने की बात है। एक साधारण युवक की गिरफ़तारी के लिये इतने व्यक्ति!"

चार सिपाही दरवाज़े पर खड़े किये गये, घर की तलाशी शुरू हुई। दालान, कोठरी, बैठक, रसोई घर यहाँ तक कि दिशा मैदान के स्थान तक को ढूंढ डाला किन्तु ललित का कहीं पता न था। अलबत्ता उसके कमरे में एक कागज़ का टुकड़ा मिला। पढ़कर सब आश्चर्य से एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। उसमें लिखा हुआ था:—

इन्स्पेक्टर साहब नमस्ते

मैं फिर भाग रहा हूँ, आप के पुलिस वाले समझ गये होंगे कि मैं कितना भयानक व्यक्ति हूँ ज़रा बचते रहियेगा।"

भारत माता का तुच्छ सेवक

शरद

बंगाली बाबू ने अपने माथे पर हाथ मार कर कहा—"बना बनाया खेल बिगड़ गया, कम्बख्त ने बड़ा चकमा दिया। महीनों की महनत पर पानी फिर गया।"

पुलिस निराश हो कर वापस चली गई। हम सब भी उमाशंकर के साथ ललित के लिये आँसू बहाने लगे। ललित से हम सब को बहुत अधिक प्रेम था, उस का यह काम देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ।

महाशय मैं वही डाक्टर हूँ, मेरी डाक्टरी बहुत चमक गई है, उमाशंकर मैट्रिक पास कर चुका है, उसकी दशा दिन प्रतिदिन

बदलती जा रही है। यह वही उमाशंकर है जो अपने हाथों गिलास में पानी भी नहीं डालता था आज वही गरीबों की सेवा के लिये हर समय उद्यत रहता है। ललित के पश्चात् स्वयं सेवक का जीता जागता चित्र मुझे उमाशंकर ही में दिखाई दिया। एक दिन बैठे-बैठे ललित का ध्यान आ गया, आँखों में आँसू भर आये। उस की स्मृति से पुराना प्रेम ताज़ा हो गया। इसी बीच में उमाशंकर ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में एक अँग्रेजी का अखबार था। मुंह लाल हो रहा था, आँखें डबडबा रही थीं। उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा--"ललित को आजीवन देश निकाले का दंड दिया गया है। वह कातिल नहीं था, वह देश का सच्चा सेवक, स्वतन्त्रता का पुजारी, सहृदय और सब से प्रेम का बरतावा करने वाला मनुष्य था।"

ललित का उद्देश्य कत्ल या लूटमार करना रहा हो या विद्रोह, इस के विषय में मैं कुछ नहीं जानता, मैं उसके स्पष्ट वादी स्वभाव और उस की सादगी का कायल हूँ। मुझे उस पर पूर्ण विश्वास था। उमाशंकर के ये शब्द सुन कर मेरा हृदय दहल गया, उमाशंकर रोने लगा। मैं भी अधिक न सहन कर सका, मैंने अपने आँसू पूंछे। इसके पश्चात् उससे कहा--"उमाशंकर ! ललित को देखने के लिए हृदय विकल है, वह कब तक वापस आयेगा।"